साहित्यशास्त्र-परिचय

कक्षा 11 के लिए ऐच्छिक हिंदी की पाठ्यपुस्तक

साहित्यशास्त्र-परिचय

कक्षा 11 के लिए ऐच्छिक हिंदी की पाठ्यपुस्तक

लेखक

राधावल्लभ त्रिपाठी

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
सितम्बर 2002
भाद्रपद 1924

ISBN 81-7450-074-X

PD 100T RP

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32 बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	24 परगना 743 179

प्रकाशन सहयोग

संपादन · राजपाल
उत्पादन · प्रमोद रावत
राजेन्द्र चौहान
आवरण · कर्ण चड्ढा

रु. 17.00

एन सी.ई आर टी. वाटर मार्क 70 जी एस एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल आर्फसेट वर्क्स, ए–56, सैक्टर–V, नोएडा–201 301 द्वारा मुद्रित ।

आमुख

शिक्षा एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया है इसलिए नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नए पाठ्यक्रम के विकास और नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य सतत चलता रहता है। सन् 2000 में परिषद् ने **विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा** तैयार की और उसके आधार पर विभिन्न पाठ्यक्रमों में संशोधन एवं परिवर्तन किए गए। नवनिर्मित पाठ्यक्रमों के अनुरूप परिषद् ने नवीन पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का निश्चय किया है। इसी दृष्टि से ग्यारहवीं कक्षा में ऐच्छिक हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक **साहित्यशास्त्र-परिचय** लिखी गई है।

जिस प्रकार किसी भाषा के व्यवस्थित ज्ञान और विशुद्ध व्यवहार के लिए उसके व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है, उसी प्रकार साहित्य-विवेक विकसित करने के लिए साहित्यशास्त्र का अध्ययन अपेक्षित होता है। साहित्यशास्त्र विद्यार्थियों को साहित्य समझने की दृष्टि देता है और साहित्य को परखने की कसौटियाँ भी प्रदान करता है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी विषय का व्यवस्थित अध्ययन प्रारंभ करते हैं और विषय की गहराई से भी परिचित होते हैं। इस स्तर पर ऐच्छिक रूप से हिंदी साहित्य पढ़ने वाले विद्यार्थियों में विकसित होती हुई साहित्यिक अभिरुचि को सजग बनाने और साहित्यिक रचनाओं के गुण-दोष-परीक्षण की प्रवृत्ति को विकसित करने में साहित्यशास्त्र का अध्ययन सहायक होता है। इसी उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है। इस पुस्तक का प्रमुख प्रयोजन है विद्यार्थियों को साहित्यशास्त्र की प्रारंभिक और प्रामाणिक जानकारी प्रदान करना। विद्वान लेखक ने शास्त्र की जटिलताओं से बचते हुए सुबोध और रोचक

शैली में साहित्यशास्त्र के विभिन्न अंगों, अवधारणाओं, प्रवृत्तियों और साहित्य के विभिन्न रूपों का विवेचन किया है। साहित्य संबंधी मान्यताओं और धारणाओं को समझाने के लिए पुस्तक में बहुत ही सरस और रोचक उदाहरणों के द्वारा विवेचन को सरल बनाया गया है। साथ ही इसमें कुछ कविताओं और गद्य-खंडों के साहित्यिक सौंदर्य का विश्लेषण भी है, जो विद्यार्थियों में व्यावहारिक समीक्षा-दृष्टि विकसित करने में सहायक होगा।

साहित्य में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं और साहित्यशास्त्र संबंधी चिंतन का भी विकास होता रहा है। इस बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तक के लेखक ने साहित्य और साहित्य-चिंतन संबंधी भारतीय परंपराओं और नवीन प्रवृत्तियों का सहज और सुबोध भाषा में विश्लेषण करते हुए पुस्तक को अद्यतन बनाया है।

हमारे अनुरोध पर डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय, सागर ने यह पुस्तक लिखी है। इसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। लेखक द्वारा तैयार की गई पांडुलिपि को एक कार्यशाला में अंतिम रूप दिया गया, जिसमें शिक्षकों और विषय-विशेषज्ञों ने भाग लिया । हम उन सभी विद्वानों के प्रति आभारी हैं जिनके मूल्यवान सुझाव पुस्तक-निर्माण में सहायक सिद्ध हुए।

आशा है विद्यार्थियों में साहित्यिक ज्ञान और रुचि के विकास की दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तक के विषय में अध्यापकों और विद्यार्थियों के सुझावों का परिषद् सदैव स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
मई, 2002

भूमिका

साहित्यशास्त्र-परिचय पुस्तक कक्षा 11 में ऐच्छिक रूप से हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सुबोध रूप में साहित्य के सिद्धातों से परिचित कराने के लिए लिखी गई है। हमारा प्रयास रहा है कि विद्यार्थियों को शास्त्र की जटिलताओं में उलझाए बिना साहित्यशास्त्र की विभिन्न कोटियों और अवधारणाओं से प्रमाणिक रूप से परिचित कराया जा सके। इस पुस्तक में साहित्य के सिद्धांतों का विवेचन इस प्रकार किया गया है कि विद्यार्थियों में साहित्य की समझ का विकास हो। साथ ही उनकी तर्कशक्ति और विश्लेषण क्षमता भी परिपक्व बने।

साहित्य की विभिन्न विधाओं और शब्दशक्ति, रस, गुण-दोष, अलकार, छंद आदि से संबंधित जो उदाहरण यहाँ दिए गए हैं, शिक्षक उनके अतिरिक्त अन्यान्य उदाहरण पाठ्यपुस्तकों अथवा परिचित साहित्यिक कृतियों से देकर विद्यार्थियों के ज्ञान और रुचि का विस्तार कर सकते हैं। परंतु यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उन उदाहरणों के द्वारा विद्यार्थी साहित्य के प्रति आकर्षित हों और साहित्यशास्त्र के सिद्धांतों को समझकर साहित्यिक कृतियों का विश्लेषण स्वयं भी करना सीखें। पुस्तक में जिन विधाओं का विवेचन है उनकी विशेषताओं से विद्यार्थियों को परिचित कराते हुए उनसे इन विधाओं में अभ्यासार्थ लेखन भी कराया जाना चाहिए। इसी प्रकार छंद-विषयक अध्याय के अध्यापन में अलग-अलग छंदों को उनकी उचित लय के साथ पठित करने का अभ्यास कराना भी अपेक्षित होगा।

पुस्तक के परिशिष्ट भाग में किसी भी रचना के साहित्यिक सौंदर्य का विवेचन किस प्रकार किया जाए, यह चार कविताओं और दो गद्यांशों की व्यावहारिक समीक्षा द्वारा

स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार अन्य कविताओं या गद्य रचनाओं की व्यावहारिक समीक्षा का अभ्यास विद्यार्थियों से कराया जा सकता है।

इस पाठ्यक्रम के लिए सेमेस्टर प्रणाली प्रस्तावित है, इसलिए पुस्तक के पहले तीन अध्याय प्रथम सेमेस्टर में और अध्याय 4, 5, 6 और 7 द्वितीय सेमेस्टर में पढ़ाए जा सकते हैं। जहाँ सेमेस्टर प्रणाली लागू नहीं हो वहाँ यह पुस्तक पूर्व-प्रणाली के अनुसार पढ़ाई जाए।

विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों में साहित्य की सही समझ विकसित करने और उसके रसास्वादन में सहायक होगी।

राधावल्लभ त्रिपाठी

पांडुलिपि समीक्षा संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन

श्री निरंजन कुमार सिंह
अवकाश प्राप्त रीडर,
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी
शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.,
नई दिल्ली

डा. रामकरण डबास
वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापक,
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

डा. कमल सत्यार्थी
अवकाश प्राप्त वरिष्ठ हिंदी अध्यापक,
सरदार पटेल विद्यालय, नई दिल्ली

डा. राधिका शर्मा
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका,
केंद्रीय विद्यालय न. 1,
दिल्ली कैंट

श्रीमती हरजीत कौर गिल
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका,
सर्वोदय कन्या विद्यालय,
मालवीय नगर, नई दिल्ली

श्रीमती दयावती
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका,
सर्वोदय कन्या विद्यालय,
कंझावला, गाँव मुँडका, दिल्ली

प्रो. अनिरुद्ध राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर,
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

श्री लालचंद राम
प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान एवं
मानविकी शिक्षा विभाग,
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

डा. चन्द्रा सदायत (***संयोजक***)
रीडर, सामाजिक विज्ञान
एवं मानविकी शिक्षा विभाग,
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं । जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा । क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है ।

मो. क. गांधी

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ संख्या
	आमुख	(v)
	भूमिका	(vii)
1.	**साहित्य का स्वरूप और उसकी उपादेयता**	1
	साहित्य से तात्पर्य	1
	वाङ्मय, साहित्य तथा काव्य	3
	साहित्य का प्रयोजन	4
	साहित्यशास्त्र से तात्पर्य	6
	साहित्यशास्त्र की उपादेयता	6
	निष्कर्ष	7
2.	**साहित्य की विधाएँ**	8
	साहित्यिक विधाओं के वर्गीकरण के आधार	8
	पद्य की विधाएँ	11
	गद्य की विधाएँ	19
	दृश्य साहित्य की विधाएँ	33
3.	**शब्दशक्ति विवेचन**	38
	शब्दशक्ति का स्वरूप	38
	शब्दशक्ति के प्रकार	39

4.	रस विवेचन	43
	रस से तात्पर्य	43
	रस के अवयव	43
	रस के भेद	46
	रसों की परस्पर अनुकूलता और प्रतिकूलता	53
	रसों का पुरुषार्थ से संबंध	54
5.	गुण-दोष विवेचन	55
	काव्य के गुण	55
	काव्य के दोष	57
6.	अलंकार विवेचन	61
	अलंकार से तात्पर्य	61
	अलंकार के मुख्य भेद	61
	बिंब	70
	प्रतीक	71
7.	छंद विवेचन	74
	छंद का स्वरूप	74
	छंद से तात्पर्य	74
	छंद के घटक	74
	छंद के भेद	75
	गण	77
	मुक्त छंद	82
परिशिष्ट	साहित्य-सौंदर्य विवेचन	83
	काव्य-सौंदर्य विवेचन	83
	गद्यांश-सौंदर्य विवेचन	97
	प्रश्न-अभ्यास	102

अध्याय 1

साहित्य का स्वरूप और उसकी उपादेयता

साहित्य से तात्पर्य

साहित्य शब्द सहित से बना है। सहित के दो अर्थ हैं-- साथ-साथ और हित-युक्त। साहित्य का तात्पर्य समझने के लिए इन दोनों अर्थों को स्वीकार करना आवश्यक है।

पहले अर्थ पर विचार करें, तो हम देखते हैं कि साहित्य में दो तत्त्व सदा एक साथ चलते हैं-- शब्द और अर्थ। इस तरह शब्द और अर्थ का सहित होना या साथ-साथ रहना साहित्य है। जो भाषा हम दैनिक जीवन में बोलते हैं, उसमें भी शब्द और अर्थ साथ-साथ रहते हैं। भाषा में बिना शब्द के अर्थ नहीं होता और बिना अर्थ के शब्द भी निरर्थक हो जाता है। पर साहित्य में शब्द और अर्थ का साथ अपनी अलग खूबसूरती या निरालापन लिए रहता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि साहित्य ऐसी कृति या रचना है जिसमें शब्द और अर्थ दोनों सुंदरता लाने में परस्पर प्रतिस्पर्धी हों। सुंदर शब्द और सुंदर अर्थ का सहित या साथ-साथ होना साहित्य है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद्यांश लें--

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे ।
जब सावन घन सघन बरसते
इन आँखों की छाया भर थे ।
    सुरधनुरंजित नवजलधर से
    भरे क्षितिजव्यापी अंबर से।
    मिले, चूमते जब सरिता के,
    हरित कूलयुग मधुर अधर थे।

जयशंकर प्रसाद की *वे कुछ दिन* शीर्षक इस कविता में स्मृति नामक भाव की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के कारण इसमें अर्थ की सुंदरता आ गई है। जिस प्रकार का अर्थ है उसी प्रकार के सुंदर शब्दों का भी विन्यास कवि ने किया है।

सहित शब्द भी धा धातु (क्रिया) के पहले 'स' जोड़कर उसी तरह बना है, जिस तरह धा धातु के पहले नि, वि आदि उपसर्ग जोड़ कर निहित, विहित आदि शब्द बने हैं। धा धातु का मुख्य रूप से अर्थ होता है धारण करना। साहित्य शब्द और अर्थ दोनों को और दोनों की पूरी सुंदरता को एक साथ धारण करता है।

साहित्य को पढ़कर या सुनकर तथा नाटक का अभिनय देखकर हम सौंदर्य का अनुभव करते हैं। इस अनुभव से हमें आनंद मिलता है। पुराने आचार्यों ने सौंदर्य के इस अनुभव (सौंदर्यानुभूति) को आस्वाद कहा है। यह सौंदर्यानुभूति या आस्वाद ही साहित्य का सार है, इस दृष्टि से काव्यशास्त्र के एक आचार्य ने साहित्य का यह लक्षण किया कि 'रसात्मक वाक्य ही काव्य या साहित्य है।'

साहित्य के दो पक्ष (पहलू) हैं– कला पक्ष तथा भाव पक्ष। इन्हीं को अभिव्यक्ति पक्ष और अनुभूति पक्ष भी कहा जाता है। शब्द की सुंदरता से साहित्य में कला पक्ष उत्कृष्ट बनता है। अर्थ की सुंदरता से उसका भाव पक्ष मनोहर हो जाता है। अभिव्यक्ति या कला पक्ष का संबंध बहिरंग और भाव या अनुभूति पक्ष का संबंध अंतरंग तत्त्वों से है।

धा धातु का एक अर्थ स्थापित करना भी होता है। साहित्य में रचनाकार अपने भावों, विचारों और आदर्शों को स्थापित करता है। ये भाव, विचार और आदर्श साहित्य में निहित रहते हैं और समाज के सब लोगों तक पहुंचते हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि साहित्य शब्दों और अर्थों के समन्वित सौंदर्य से रची गई ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा रचनाकार अपने भाव, विचार और आदर्शों को व्यक्त करता है। इन भावों या विचारों के कारण साहित्य समाज में धारण करने योग्य बनता है। अतः साहित्य शब्द के मूल में जो धा धातु है उसके द्वारा साहित्य का एक अर्थ यह भी है कि वह समाज के द्वारा धारण या मान्य की जाने वाली रचना है।

हमने देखा कि साहित्य शब्द सहित से बना है। सहित का एक अर्थ हित से युक्त भी होता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि जो समाज के हित या लोकमंगल के लिए हो, वह साहित्य है।

निष्कर्षतः साहित्य का लक्षण हम इस प्रकार कर सकते हैं—**साहित्य शब्द और अर्थ के समन्वित सौंदर्य से निर्मित ऐसी लोकमंगलकारी रचना है, जो रचनाकार के भावों, विचारों या आदर्शों को पाठक या समाज तक संप्रेषित करती है।**

वाङ्मय, साहित्य तथा काव्य

वाङ्मय शब्द वाक् शब्द में मय प्रत्यय लगाकर बना है (वाक् + मय = वाङ्मय) वाक् का अर्थ होता है– वाणी या बोली। जो वाक् या वाणी से बना हुआ हो वह वाङ्मय है। यह वाक् या वाणी शब्दों से बनती है। शब्दों में अर्थ रहता है। शब्द और अर्थ से बनने वाली वाक् या वाणी को हम भाषा भी कहते हैं। हम इस भाषा के द्वारा जो कुछ बोलकर या लिखकर प्रकट करते हैं– वह सब वाङ्मय है। आप जिस पुस्तक को इस समय पढ़ रहे हैं, वह भी वाङ्मय का उदाहरण है। यदि आप इस पुस्तक को पढ़कर इसके विषय पर कुछ चर्चा करते हैं, तो भी वाङ्मय होगा। वाङ्मय के दो रूप हैं– शास्त्रीय वाङ्मय और ललित वाङ्मय। पहला रूप चिंतन प्रधान होता है। इसमें विचार को अधिक महत्त्व दिया जाता है। दूसरा रूप सौंदर्य प्रधान होता है। इसमें आस्वाद को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

साहित्य शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है– व्यापक अर्थ में और सीमित अर्थ में। व्यापक अर्थ में साहित्य वाङ्मय का पर्याय है और सीमित अर्थ में कविता, कहानी, उपन्यास आदि रचनात्मक विधाओं को साहित्य कहा जाता है। इस प्रकार वाङ्मय की भाँति साहित्य के भी दो प्रकार हैं– शास्त्रीय साहित्य और ललित साहित्य। व्यापक अर्थ में साहित्य से आशय साहित्य के इन दोनों रूपों से लिया जाता है। सीमित अर्थ में साहित्य का आशय ललित साहित्य से लिया जाता है।

वाक् या वाणी मूलतः तो बोलने और सुनने के लिए ही थी पर सभ्यता के विकास में जब लिपि या लिखने की कला का आविष्कार हो गया, तो इसी को हम लिखकर भी प्रकट करने लगे। इस प्रकार वाङ्मय के दो रूप हो गए—मौखिक और लिखित।

वाणी या शब्दों से वाङ्मय बनता है। यह वाणी मनुष्य की अपनी पहचान है। वाणी का प्रयोग मनुष्य तीन प्रकार से करता है— (1) अपनी बात को सीधे-सादे ढंग से कहने के लिए, (2) अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में प्रकट करने के लिए और (3) अपने अनुभव को इस प्रकार प्रकट करने के लिए कि उससे श्रोता या पाठक आनंदित हों।

इन तीनों में से बोली जाने वाली रोजमर्रा की भाषा वाणी का पहला रूप है। पुराने आचार्यों ने इसी को 'वार्ता' कहा है। वाणी का दूसरा रूप विचार प्रधान या चिंतन प्रधान है जिसे शास्त्र कहा गया है। वाणी का तीसरा रूप, जिसमें सौंदर्य या लालित्य होता है, ललित वाङ्मय या (ललित) साहित्य है।

साहित्य तथा काव्य

हमने जिसे साहित्य कहा है, उसी को पहले काव्य कहा जाता था। आजकल हिंदी में काव्य शब्द का प्रयोग केवल कविता के लिए होता है। अतः काव्य का आशय होता है—पद्य (छंद, अतुकांत या मुक्त छंद) में लिखी गई रचनाएँ। इस प्रकार काव्य साहित्य का एक ऐसा रूप या अंग है, जिसमें प्राय. गद्य में लिखी गई रचनाएँ—निबंध, कहानी, उपन्यास आदि सम्मिलित नहीं हैं। अब साहित्य के मुख्यतः दो रूप माने जाते हैं— गद्य और पद्य।

साहित्य का प्रयोजन

साहित्य का प्रयोजन दो दृष्टियों से बताया जा सकता है— निर्माण (रचना) की दृष्टि से तथा ग्रहण की दृष्टि से। कोई भी साहित्यकार रचना क्यो करता है ? क्योंकि वह अपनी बात दूसरो तक पहुँचाना चाहता है। इस प्रकार साहित्यकार के भावों या विचारों का संप्रेषण साहित्य का एक प्रयोजन है। अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने से या संप्रेषण से साहित्यकार को आत्मिक सुख अथवा संतोष मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी को 'स्वांतः सुखाय'

कहा है। इसके साथ ही साहित्यकार को अपनी रचना से यश भी मिलता है। संसार में प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसका नाम हो और लोग उसे याद रखें। साहित्यकार को भी समाज उसके श्रेष्ठ साहित्य के कारण याद रखता है। इसलिए पुराने आचार्यों ने आनंद की प्राप्ति के साथ यश और अर्थ (धन) की प्राप्ति को भी साहित्य के प्रयोजनों में गिना है। पर यह सत्य है कि कोई भी साहित्यकार मुख्य रूप से यश या धन पाने के लिए रचना नहीं करता।

साहित्य के अध्ययन से हमें क्या मिलता है ? साहित्य के अध्ययन से हम अपने समाज और संसार के विषय में ऐसी अनेक बातें जान सकते हैं, जो हमें पहले विदित नहीं थीं। साहित्य हमें बताता है कि मनुष्य को किन परिस्थितियों में कैसा व्यवहार या आचरण करना चाहिए। साहित्य मस्तिष्क की उर्वरता और ज्ञान की वृद्धि के लिए है। वह मनुष्य में साहस और शक्ति का संचार करता है, उसे नैतिक दृष्टि से अधिक सबल बनाता है। वह हमारे जीवन या ससार में जो कुछ सुंदर, भव्य और उदात्त है, उससे हमारा परिचय कराता है जिसके द्वारा हम अपने व्यक्तित्व को बेहतर बना सकते हैं। जब हम साहित्य पढ़ रहे होते हैं, या नाटक का अभिनय देख रहे होते हैं तो हम अपने व्यक्तित्व की सँकरी सीमाओं से ऊपर उठ जाते हैं। इस तरह साहित्य हमें स्वार्थ और संकीर्णता से मुक्त होने की दिशा में आगे ले जाता है। कविता को पढ़कर या अच्छे नाटक को देखकर जो संस्कार हम प्राप्त करते हैं, वे हमें अधःपतन से रोककर हमारी चेतना को ऊपर उठाते हैं। सबसे बढ़कर साहित्य हमें ऐसा सात्विक आनंद प्रदान करता है, जिसे संसार की अन्य भौतिक वस्तुओं के द्वारा हम नहीं पा सकते। इस प्रकार साहित्य से व्यक्तित्व का विकास होता है, उसे सही उपदेश या सीख मिलती है और सबसे बढ़कर तो ऐसा आनंद भी वह साहित्य के द्वारा प्राप्त करता है, जो संसार में और किसी वस्तु से नहीं मिल सकता।

आचार्य भामह ने साहित्य के कीर्ति और प्रीति— ये दो प्रयोजन बताए हैं। इसके साथ ही पुराने आचार्यों ने पुरुषार्थ की सिद्धि को भी साहित्य का प्रयोजन माना है। पुरुषार्थ का आशय है मानव-जीवन का लक्ष्य। हमारी परंपरा में मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ माने गए हैं— धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। साहित्य के अध्ययन से हमें न केवल इन चारों पुरुषार्थों की जानकारी मिलती है बल्कि इनको सही रूप में प्राप्त करने की प्रेरणा और दिशा भी मिलती है।

इन सब प्रयोजनों या उद्‌देश्यों की पूर्ति के द्‌वारा साहित्य एक बेहतर समाज की रचना में अपनी भूमिका निभाता रहा है। तुलसीदास के ***रामचरितमानस*** ने करोड़ों भारतीय नर-नारियों को सच्ची राह दिखाई है। कबीर की साखियों या दोहों ने पाखंड और कुरीति की राह से हटने की प्रेरणा दी है। भारतेंदु, प्रेमचंद, पंत, प्रसाद, निराला आदि साहित्यकारों का साहित्य पढ़कर हम सात्विक और उदात्त जीवनमूल्यों की ओर अग्रसर होते हैं।

साहित्यशास्त्र से तात्पर्य

शास्त्र एक ऐसा साधन है जो किसी एक क्षेत्र में मनुष्य समाज को दिशा निर्देश देता है या उसे अनुशासित करता है। साहित्य के क्षेत्र में दिशा निर्देश देने वाला या इसे अनुशासित करने वाला शास्त्र साहित्यशास्त्र है। प्राचीन काल में हमारे यहाँ इस शास्त्र को अलंकारशास्त्र या काव्यशास्त्र भी कहा जाता था।

साहित्य तथा साहित्यशास्त्र का अटूट संबंध है। जब साहित्य की रचना होती है तो उसके गुण-दोषों और विशेषताओं का विवेचन भी होने लगता है। इसलिए साहित्य की परंपरा जितनी पुरानी है प्रायः उतनी ही पुरानी परंपरा साहित्यशास्त्र की भी है। साहित्य और साहित्यशास्त्र के परस्पर संबंध को उपकार्य-उपकारकभाव संबंध कह सकते हैं। अर्थात दोनों एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं, दोनों में से एक का विकास होता है, तो दूसरा भी उसके द्‌वारा विकसित होता है। साहित्यशास्त्र में महान रचनाओं से साहित्य के मानदंड या सिद्‌धांत बनाए जाते हैं। ये मानदंड तथा सिद्‌धांत नए साहित्यकारों के लिए पथ-प्रदर्शक होते हैं।

साहित्यशास्त्र की उपादेयता

साहित्यशास्त्र के द्‌वारा हम उन तत्त्वों और सिद्‌धांतों को समझ सकते हैं, जिनसे श्रेष्ठ साहित्य बनता है। इस प्रकार साहित्यशास्त्र हमें साहित्य को परखने की कसौटियाँ प्रदान करता है। इसके साथ ही हम किसी साहित्य के दोषों या कमियों को भी इस शास्त्र की सहायता से जान सकते हैं। इस प्रकार साहित्यशास्त्र रचनाकार और पाठक दोनों के लिए उपादेय है। रचनाकार उसके माध्यम से अपनी प्रतिभा को और अधिक दीप्त करता है और श्रेष्ठ रचना

की प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। वह अपनी रचना की कमियों या त्रुटियों का निराकरण भी कर सकता है। पाठक में साहित्यशास्त्र के द्वारा साहित्य की समझ विकसित होती है। वह अच्छे साहित्य की परख कर सकने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

निष्कर्ष

साहित्य में शब्द और अर्थ सहित (एक साथ) होते हैं। साहित्य ऐसी रचना है जिसमें सौंदर्य के प्रति शब्द और अर्थ दोनों की परस्पर प्रतिस्पर्धा हो। सुंदर शब्द और सुंदर अर्थ का सहित या साथ-साथ होना साहित्य है। साहित्य का सार है– सौंदर्यानुभूति अथवा आस्वाद। अतः रसात्मक वाक्य को काव्य या साहित्य कहा गया है। काव्य के बहिरंग उपकरणों से साहित्य का कला पक्ष उत्कृष्ट बनता है और अंतरंग तत्त्वों से उसका भाव पक्ष। साहित्य का लक्षण करते हुए हम कह सकते हैं कि **साहित्य शब्द और अर्थ के समन्वित सौंदर्य से निर्मित ऐसी लोकमंगलकारी रचना है, जो रचनाकार के भावों, विचारों या आदर्शों को पाठक या समाज में संप्रेषित करती है।**

अच्छे संस्कारों को जगाना, ज्ञान और जागरूकता की वृद्धि करना, सात्विक आनंद प्रदान करते हुए मनुष्य की चेतना को परिष्कृत करना साहित्य के प्रयोजन हैं।

वाङ्मय के दो रूप हैं– मौखिक और लिखित। इन दोनों के तीन-तीन प्रकार होते हैं– वार्ता, शास्त्र और ललित साहित्य। साहित्य शब्द का प्रयोग उसके एक रूप–ललित साहित्य– के लिए भी किया जाता है। शास्त्र चिंतन प्रधान होता है, ललित वाङ्मय या ललित साहित्य आस्वाद परक होता है।

अध्याय 2

साहित्य की विधाएँ

साहित्य हमारे जीवन के विविध रूप प्रस्तुत करता है। जिस तरह जीवन में विविधता है, उसी तरह साहित्य में भी। इस विविधता के कारण साहित्य कई प्रकार का हो जाता है। साहित्य के विभिन्न प्रकारों को हम साहित्य की विधाएँ या साहित्य के भेद कहते हैं।

साहित्यिक विधाओं के वर्गीकरण के आधार

साहित्य की विभिन्न विधाओं या भेदों में वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है। मुख्य रूप से इस वर्गीकरण के आधार निम्नलिखित हैं–

(1) भाषा,

(2) अर्थ का चमत्कार,

(3) व्यक्ति और बाह्य विश्व,

(4) बंध,

(5) शैली तथा

(6) ऐंद्रिय माध्यम ।

जिस भाषा में कोई साहित्य रचना है, वह उसी भाषा की रचना कहलाती है। इस तरह महाकाव्यों में संस्कृत महाकाव्य, हिंदी महाकाव्य, अंग्रेजी महाकाव्य आदि– इस प्रकार के भेद हो सकते हैं।

अर्थ के चमत्कार की दृष्टि से अधिक चमत्कार वाली रचना उत्तम, कम चमत्कार वाली रचना मध्यम– इस प्रकार के भेद किए जाते रहे हैं।

व्यक्ति और बाह्य विश्व के आधार पर साहित्य दो प्रकार का होता है–विषयी प्रधान और विषय प्रधान। पहले प्रकार का साहित्य अंतर्मुखी होता है। उसमें रचनाकार अपने मन के भावों को मुख्य रूप से प्रकट करता है। विषय प्रधान साहित्य बहिर्मुखी होता है। उसमें साहित्यकार अपने व्यक्तिगत भावजगत तक सीमित न रहकर मुख्य रूप से बाहर के ससार और बाहर के विभिन्न विषयों को प्रस्तुत करता है।

बंध का अर्थ होता है बाँधना। साहित्य छंद में बँधा हो सकता है, किसी कथानक के द्वारा एकसूत्र में बँधा हो सकता है। बंध की दृष्टि से साहित्यिक रचना मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है– प्रबंध तथा निर्बंध। किसी कथानक, विचार या भावना के एकसूत्र में अद्यतन बँधी हुई रचना प्रबंध है। जिसमें किसी कथा का निर्वाह न हो, वह निर्बंध है। इसे मुक्तक भी कहा जाता है।

शैली की दृष्टि से रचना पद्य में हो सकती है या गद्य में। पद्य में रचित साहित्य में छंदों का या लय का प्रयोग होता है। गद्य छंद के बंधन से मुक्त होता है। कभी-कभी पद्य और गद्य दोनों को मिलाकर भी साहित्य रचा जाता है। ऐसे साहित्य को चंपू कहते हैं। इस आधार पर साहित्य के पद्य, गद्य तथा चंपू (मिश्रित)– ये तीन भेद हो जाते हैं।

ऐंद्रिय माध्यम से आशय है साहित्य को समझने के लिए हम अपनी ज्ञानेंद्रियों में से जिसका अधिक उपयोग करते हैं, उसके आधार पर विभाजन। साहित्य के कुछ रूप ऐसे हैं, जो पढ़ने या सुनने के लिए ही अधिक होते हैं। कुछ रूप ऐसे हैं, जो मंच पर अभिनय करके दिखाए जाते हैं। इस आधार पर श्रव्य और दृश्य ये दो भेद हो जाते हैं।

ऊपर हमने साहित्य की विभिन्न विधाओं या भेदों में वर्गीकरण के छह आधार बताए हैं। इनमें से दो ही आधार मुख्य हैं– शैली तथा ऐंद्रिय माध्यम। शैली के आधार पर हम साहित्य का पद्य, गद्य तथा चंपू– इन तीन विधाओं में वर्गीकरण कर सकते हैं। पद्य के अंतर्गत प्रबंध, मुक्तक, गीत, प्रगीत तथा विभिन्न प्रकार की कविताएँ– नवगीत, ग़ज़ल, लंबी कविताएँ, चतुष्पदी आदि की गिनती की जा सकती है। गद्य की विधाओं में निबंध,

आलोचना, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, यात्रावृत्तांत, डायरी, रिपोर्ताज फ़ीचर, साक्षात्कार आदि प्रमुख हैं।

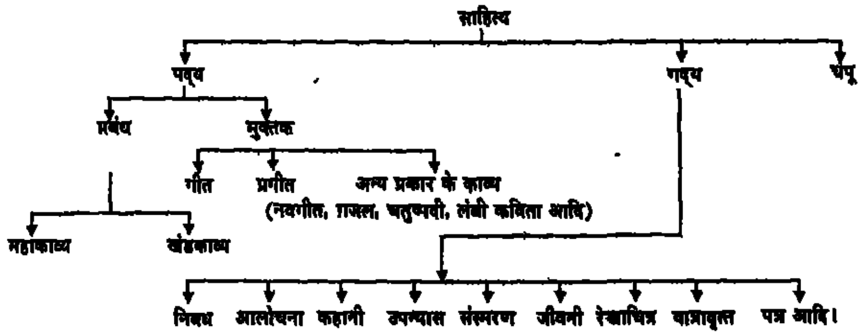
ऐंद्रिय माध्यम की दृष्टि से साहित्य की विधाएँ दो प्रकार की हैं— श्रव्य तथा दृश्य। जो पढ़ने या सुनने के लिए हों, वे विधाएँ श्रव्य हैं तथा जो देखने के लिए हों वे दृश्य हैं। श्रव्य विधाओं में पद्य और गद्य की सभी विधाएँ आ जाती हैं, जिनकी गिनती ऊपर की गई है। दृश्य विधाओं में रूपक (नाटक) के सारे प्रकार सम्मिलित हैं। इन प्रकारों में रचनाकार नाट्यरचना इस दृष्टि से ही करता है कि वह रंगमंच पर खेली जाएगी। पर आज मुद्रण की सुविधा के कारण ऐसी रचनाएँ पढ़ने के लिए भी सुलभ हैं। इसके साथ ही रूपक की श्रेणी में अब कुछ ऐसी रचनाएँ भी शामिल हो गई हैं, जो दृश्य न हो कर श्रव्य ही हैं—जैसे रेडियो-रूपक। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि सभी प्रकार के रूपक दृश्य नहीं होते।

निष्कर्षतः साहित्य के विभिन्न प्रकार साहित्य की विधाएँ कही जाती हैं। इन विधाओं का वर्गीकरण भाषा, अर्थ का चमत्कार, व्यक्ति और समाज, बंध, शैली तथा ऐंद्रिय माध्यम— इन छह आधारों पर किया जा सकता है।

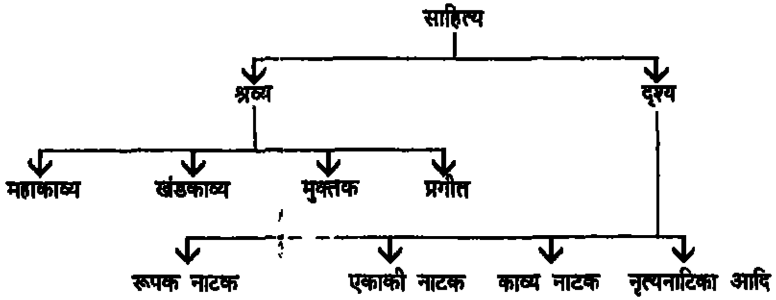
इनमें से दो आधार मुख्य हैं— शैली तथा ऐंद्रिय माध्यम।

साहित्य की विधाओं को इस तालिका के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—

बंध के आधार पर विभाजन



ऐंद्रिय माध्यम के आधार पर विभाजन



पद्य की विधाएँ

प्रबंधकाव्य— प्रबंधकाव्य ऐसी साहित्यिक रचना है, जिसमें सभी पद्य एक कथा, विचार या भाव के माध्यम से एक-दूसरे से संबद्ध रहते हैं। उसमें आरंभ से अंत तक एक मूल भाव बना रहता है। प्रबंध के दो मुख्य भेद हैं— महाकाव्य तथा खंडकाव्य।

महाकाव्य— महाकाव्य का अर्थ है महान काव्य। महाकाव्य में आकार, कथानक, पात्र और शैली की दृष्टि से महत्ता रहती है; अर्थात् इसमें महापुरुषों का प्रेरणादायक चरित्र होता है, कहानी भी बड़ी होती है तथा इसका आकार भी बड़ा होता है।

पुराने आचार्यों ने महाकाव्य का लक्षण दिया है उसके अनुसार महाकाव्य सर्गों में बँधा होता है। विभिन्न अध्यायों या खंडों को सर्ग कहा जाता है। इसमें जो कथा ली जाती है, वह इतिहास-प्रसिद्ध भी हो सकती है या प्राचीन कथा को कवि कल्पना के समावेश के साथ भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें किसी एक महान् व्यक्ति का या कुछ महान् व्यक्तियों का चरित्र प्रस्तुत किया जाता है। कथानक का विकास इस प्रकार होता है कि उसमें मनुष्य जीवन

और सृष्टि के विभिन्न पक्षों के सुंदर वर्णन बीच-बीच में जुड़ते चले जाते हैं। ऋतुओं, सागर, नदी आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी महाकाव्य में आवश्यक माना गया है। महाकाव्य में सभी रसों की अभिव्यक्ति होती है, पर शृंगार या वीर आदि किसी एक रस की प्रधानता हो सकती है। इसी प्रकार इसमें चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का वर्णन रहता है और उनमें कोई एक पुरुषार्थ प्रधान हो सकता है।

महापुरुषों के चरित्र या उदात्त चरित्र की प्रस्तुति महाकाव्य में रहनी चाहिए। उसमें मनुष्य-जीवन और जगत् के विभिन्न पक्षों का चित्रण भी अपेक्षित है। महाकाव्य में आस्वाद या सौंदर्यानुभूति की दृष्टि से विविधता होनी चाहिए। पर सर्गों में विभाजन, ऋतुवर्णन या सभी रसों की अभिव्यक्ति का होना सर्वथा आवश्यक नहीं है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार महाकाव्य में शैली की प्रौढ़ता आवश्यक है तथा इसमें कोई प्रेरणाप्रद संदेश होना चाहिए। उन्होंने महाकाव्य में चार तत्त्व आवश्यक माने हैं– इतिवृत्त (कथानक) का प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण होना, वस्तुव्यापार वर्णन (अर्थात् पात्रों की विभिन्न स्थितियों या नैसर्गिक दृश्यों का वर्णन), भावों की उत्तम व्यंजना और संवाद योजना। डॉ. नगेंद्र ने महाकाव्य के पाँच तत्त्व स्वीकार किए हैं– उदात्त (ऊँचा) कथानक, उदात्त कार्य, उदात्त भाव, उदात्त चरित्र और उदात्त शैली। डा. भगीरथ मिश्र नें महाकाव्य का स्वरूप बताते हुए चार आधारभूत तत्त्व बताए हैं– महान कथानक, महान चरित्र, महान संदेश और महान शैली।

बाबू गुलाबराय ने सुबोध रूप से आज के साहित्य की दृष्टि से महाकाव्य का यह लक्षण किया है– "महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।"

इस प्रकार महाकाव्य कथानक की दृष्टि से एक ऐसी सुसंबद्ध रचना है, जिसमें उत्कृष्ट या उदात्त भावों की अभिव्यक्ति हो।

हिंदी के पुराने महाकाव्यों में चंदबरदायी का ***पृथ्वीराजरासो***, जायसी का ***पद्मावत*** तथा गोस्वामी तुलसीदास का ***रामचरितमानस*** प्रसिद्ध हैं। आधुनिक काल के महाकाव्यों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का ***प्रियप्रवास***, मैथिलीशरण गुप्त का ***साकेत***, जयशंकर प्रसाद की ***कामायनी*** आदि का नाम लिया जा सकता है।

खंडकाव्य— खंड का अर्थ अंश या हिस्सा होता है। महाकाव्य का ही आंशिक रूप से अनुसरण करने वाली विधा खंडकाव्य कही जाती है। खंडकाव्य मे कोई एक प्रसंग, घटना, किसी बड़ी कथा का एक अंश या किसी एक विषयवस्तु का वर्णन हो सकता है, महाकाव्य की भाँति इसमे जीवन की समग्रता और पूरी कथा नही होती। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का ***जयद्रथ वध*** एक खंडकाव्य है, क्योंकि इसमें महाभारत की पूरी कथा न होकर केवल अर्जुन के द्वारा जयद्रथ के मारे जाने की घटना का ही वर्णन किया गया है। इसी प्रकार गुप्त जी की ही ***पंचवटी*** भी एक खंडकाव्य है। यह काव्य रामायण की कथा पर आधारित है, पर इसमें रामायण की पूरी कथा नहीं है। उसमें से पचवटी में शूर्पणखा से लक्ष्मण और राम की भेंट और फिर लक्ष्मण के द्वारा उसके नाक-कान काटे जाने के प्रसंग का ही चित्रण कवि ने किया है। रामधारी सिह 'दिनकर' का ***रश्मिरथी*** कर्ण के जीवन पर आधारित खंडकाव्य है।

महाकाव्य तथा खंडकाव्य में समानता और अंतर

महाकाव्य और खंडकाव्य दोनों ही विषय प्रधान काव्य-विधाएँ हैं। दोनो में ही कथासूत्र रहता है। पात्र भी दोनों में रहतें हैं पर महाकाव्य के समान खंडकाव्य में कथा और वर्णनीय विषयों की पूर्णता अथवा विस्तार नहीं होता।

मुक्तक श्रेणी की विधाएँ

मुक्तक— मुक्तक स्वतत्र तथा अपने आप में पूरी रचना है। एक ऐसा पद्य या कुछ पद्यों का समूह, जो अपने आप में पूरा हो, मुक्तक कहलाता है। इसमें सिलसिलेवार कोई कथा नहीं होती। मुक्तक के दो प्रकार हैं— गेय मुक्तक तथा अगेय मुक्तक।

गीत— मुक्तक का ऐसा रूप जो गाए जाने के लिए ही हो गीत कहलाता है। प्रत्येक गीत में दो भाग रहते हैं— स्थायी और अंतरा। पहली पंक्ति जिसे बाद में बार-बार दोहराया जाता है, स्थायी कहलाती है। शेष पंक्तियाँ अंतरा कहलाती हैं। गीत में स्थायी और अंतरों की सभी पंक्तियाँ गायन के अनुसार ताल, लय तथा छंद में बँधी होती हैं। अंत्यानुप्रास (तुक) का निर्वाह भी गीत की सभी पंक्तियों में होता है। कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, रैदास आदि के पद या गीत इसके उत्तम उदाहरण हैं। जैसे—

मन पछितैहैं अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते।
सहसबाहु दसवदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।...

तुलसीदास के इस पद में पहली पंक्ति स्थायी है। शेष पंक्तियाँ अंतरा हैं। दीर्घ ईकार के साथ 'ते' हर पंक्ति के अंत में आता है, इस प्रकार अंत्यानुप्रास या तुक का निर्वाह किया गया है। यह पद मुख्य रूप से ताल और लय के साथ गाए जाने के लिए है, केवल पढ़ने के लिए नहीं। इस प्रकार यह गीत का उदाहरण है। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त के ***यशोधरा*** चंपू के अंतर्गत 'सखि वे मुझसे कह कर जाते' गीत है।

कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों के गीतों को पद कहा गया है। पद आराध्य के प्रति समर्पण के भाव से रचे जाते हैं। आधुनिक काल में जो गीत लिखे जाते हैं, उनमें भक्ति या आराध्य के लिए समर्पण भाव होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार पद की अपेक्षा आधुनिक गीत विषयवस्तु की दृष्टि से अधिक व्यापक है। आधुनिक गीत में ऊपर बताए गए लक्षणों के अतिरिक्त निम्नलिखित चार तत्त्व विशेष रूप से मिलते हैं—

(1) संक्षिप्तता
(2) भावमयता
(3) वैयक्तिकता
(4) तनाव तथा तनाव से मुक्ति ।

प्रगीत—मुक्तक श्रेणी की रचनाओं में प्रगीत अपेक्षाकृत नई विधा है। इसे गीतिकाव्य भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'लिरिक' कहा जाता है। प्रगीत में गीत के सभी लक्षण लागू होते हैं, पर इसका गाया जाना अनिवार्य नहीं है। गीत में छंद और लय संगीतशास्त्र के अनुसार होते हैं, प्रगीत में इनका संगीत के अनुसार होना भी आवश्यक नहीं है। प्रगीत एक ऐसी लयबद्ध पद्य रचना है, जो छंद या मुक्त छंद में भी हो सकती है तथा जिसमें कवि की निजी भावनाएँ व्यक्त होती हैं। भावनाओं की तीव्रता इसकी विशेषता है। निराला की रचना ***स्नेह निर्झर बह गया है*** प्रगीत का अच्छा उदाहरण है—

स्नेह-निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी—
कह रही है— "अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन दह गया है।"

प्रगीत छंद में भी हो सकता है और मुक्त छंद में भी। हरिवंश राय 'बच्चन' की यह रचना भी प्रगीत का उदाहरण है —

इसीलिये खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो,
जमीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहान देख कर मुझे
नहीं ज़बान खोलता
नहीं जगह कहीं जहाँ

न अजनबी गिना गया,
कहाँ कहाँ न फिर चुका
दिमाग दिल टटोलता,
कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसलिए अड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो;
इसलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो।

मुक्त छंद की कविताएँ— मुक्त छंद की कविता में अंत्यानुप्रास (तुक) का बंधन नहीं रहता। लय इसमें अंतर्निहित या भीतर ही भीतर छिपी रहती है, पर मात्राओं या वर्णों के विन्यास की दृष्टि से छंद के नियमो का पालन नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए निराला की ***वह तोड़ती पत्थर*** की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप।
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई
प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर

इस कविता में छंद के नियम के अनुसार पंक्तियाँ नहीं हैं। प्रत्येक पंक्ति में छंद अंतर्निहित (भीतर समाया हुआ) है। लय का निर्वाह किया गया है।

मुक्त छंद में कई प्रकार की कविताएँ लिखी जाती हैं। मुक्तक कोटि की रचना भी तथा लंबी कविता भी।

आधुनिक काव्य की अन्य विधाएँ

लंबी कविता— आधुनिक साहित्य में खंडकाव्य का स्थान लंबी कविता ने ले लिया है। लंबी कविता प्रायः मुक्त छंद में लिखी जाती है। यह वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावप्रधान हो सकती है। निराला की ***राम की शक्तिपूजा,*** मुक्तिबोध की ***अंधेरे में*** या अज्ञेय की ***असाध्य वीणा*** लंबी कविता के उदाहरण हैं।

चतुष्पदी— चतुष्पदी मुक्तक के अंतर्गत प्रगीत का ही एक प्रकार है। इसका विशेष स्वरूप यह है कि इसमें चार ही पंक्तियाँ होती हैं। यह चार पंक्तियों की अपने आप में संपूर्ण कविता है। इसे गाया भी जा सकता है और इसका सस्वर पाठ भी किया जा सकता है।

अतुकांत कविता— तुक या अंत्यानुप्रास अनेक छंदों में रहता है। आधुनिक कविता में ऐसे छंदों का प्रचलन हुआ, जिनमें तुक का निर्वाह नहीं किया गया। ऐसी कविता को अतुकांत कविता कहा जाता है। अतुकांत कविता में छंद का अनुशासन रहता है। किसी एक छंद के विधान का कवि निर्वाह करता है, पर तुक का निर्वाह नहीं करता। उदाहरण के लिए अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का यह छंद—

पीछे बातें विविध करती काँपती कष्ट पातीं
आई लेके स्वप्रिय पति को सद्‌म में नंदवामा
आशा की है अमित महिमा धन्य तू है देवि आशा
तू छूके है अमृतवनिते प्राणियों को जिलाती।

यहाँ मंदाक्राता छंद के विधान का पालन करते हुए प्रत्येक चरण में 17-17 अक्षर तथा 27-27 मात्राएँ गणों के क्रम से रखी गई हैं, पर अंत्यानुप्रास का निर्वाह नहीं किया गया है। इसी प्रकार रामधारी सिंह 'दिनकर' ने **कुरूक्षेत्र** महाकाव्य में अलग-अलग छंदों को अपनाते हुए अतुकांत काव्य लिखा है। उदाहरण के लिए—

और भी थे भाव उनके हृदय में
स्वार्थ के नरता के कि जलते शौर्य के
खींच कर जिसने उन्हें आगे किया
हेतु उस आवेश का था और भी।

ग़ज़ल— ग़ज़ल की विधा फ़ारसी तथा उर्दू भाषाओं के साहित्य में मुख्य रूप से विकसित हुई है। आजकल हिंदी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी ग़ज़लें लिखी जा रही हैं। ग़ज़ल में दो चरणों की एक इकाई होती है, जिसे शेर कहते हैं। शेर का एक चरण 'मिसरा' कहलाता है। आमतौर पर एक ग़ज़ल में पाँच से पच्चीस तक शेर हो सकते हैं। ग़ज़ल का पहला शेर 'मतला' कहलाता है। हर शेर के दूसरे मिसरे के अंत में एक या एक से अधिक शब्द दुहराए जाते हैं, जिन्हें 'रदीफ़' कहते हैं। रदीफ़ के पहले क़ाफ़िया होता है। 'क़ाफ़िया' एक जैसी ध्वनि वाला शब्द है। मतले के दोनों मिसरों में रदीफ़ और क़ाफ़िया का निर्वाह किया जाता है, जबकि बाकी शेरों में से हर एक के दूसरे मिसरे में रदीफ़ और क़ाफ़िया का निर्वाह होता है। ग़ज़ल का अंतिम शेर 'मक़ता' कहलाता है। मक़ते में कवि अपना उपनाम (तख़ल्लुस) देता है।

उदाहरण —

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।
एक चिनगारी कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तो,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।.....

दुष्यंत कुमार की इस ग़ज़ल में 'तो है' रदीफ़ है, और मतले का 'टकराती' काफ़िया है, जिसे हर शेर के दूसरे मिसरे में बाती, गाती, जाती आदि शब्दों के द्वारा मिलाया गया है।

हिंदी में दुष्यंत कुमार, शमशेरबहादुर सिंह, त्रिलोचन, अदम गोंडवी, शलभ श्रीरामसिंह आदि कवियों ने ग़ज़लें लिखी हैं।

निष्कर्षतः प्रबंध और मुक्तक दोनों ही पद्य की विधाएँ हैं। महाकाव्य आकार में बड़ा तो होता ही है, विषयवस्तु की दृष्टि से भी उसका कलेवर बड़ा होता है। महाकाव्य विषय प्रधान होता है, मुक्तक मुख्य रूप से विषयी प्रधान विधा है। प्रबंध या महाकाव्य में एक सुनिश्चित कथानक होता है। प्रबंध की तुलना में मुक्तक की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें एक-एक पद्य अपने आप में स्वतंत्र रूप से आस्वाद प्रदान कर सकता है। प्रबंध की भाँति उसमें पूर्वापर संबंध होना आवश्यक नहीं है।

गद्य की विधाएँ

गद्य शब्द गद् (बोलना) धातु से बना है। जो बोला जाए या कहा जाए, वह गद्य है। पद्य का सस्वर पाठ किया जाता है और यह छंद या लय में बँधा रहता है जबकि गद्य छंद में बँधा हुआ नहीं होता।

आज के साहित्य में गद्य में अनेक विधाएँ विकसित हो गई हैं। इनमें से मुख्य विधाएँ हैं— निबंध, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृत्तांत, रिपोर्ताज, डायरी, पत्र-साहित्य, साक्षात्कार, फ़ीचर, तथा आलोचना।

निबंध

निबंध शब्द नि उपसर्ग के साथ बंध (बाँधना) धातु से बना है। विचारों या भावों को सुसंबद्ध रूप में बाँधकर जिस विधा में प्रकट किया जाए वह निबंध है। यह अंग्रेज़ी के एस्से (ESSAY) का पर्याय है।

निबंध गद्य का ऐसा प्रकार है, जिसमें लेखक किसी विषय अथवा वस्तु के संबंध में अपने विचारों या भावों को एक सीमित आकार में इस प्रकार प्रकट करता है कि वे पाठक के मन पर प्रभाव या छाप अंकित कर सकें। लेखक के व्यक्तित्व, चिंतन या संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति निबंध में आवश्यक है। विचारों और वर्णन की दृष्टि से निबंध अपने आप में पूर्ण होना चाहिए।

निबंध गद्य रचना का सबसे विकसित रूप माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो निबंध को गद्य की कसौटी कहा है। उनके अनुसार भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव है।

निबंध के प्रकार

निबंध मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं– विषय प्रधान और विषयी प्रधान। विषय प्रधान निबंधों में विचार या चिंतन की मुख्यता रहती है, विषयी प्रधान निबंधों में लेखक की व्यक्तिगत भावनाओं की। हिंदी में पाँच प्रकार के निबंध लिखे गए हैं– वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, भावात्मक तथा ललित निबंध।

(1) *वर्णनात्मक निबंध*– वर्णनात्मक निबंध में निबंधकार किसी बाह्य दृश्य का वर्णन करता है परंतु वर्णन में तटस्थता रहती है । भारतेंदु के प्रकृति संबंधी निबंध वर्णनात्मक निबंध है।

(2) *विवरणात्मक निबंध*– विवरणात्मक निबंध में निबंधकार किसी घटना का विवरण प्रस्तुत करता है। यह विवरण क्रमबद्ध (सिलसिलेवार) तथा सुसंगत होना चाहिए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का ***वैदिक देवता*** तथा ***एक समालोचक की डाक*** विवरणात्मक निबंध हैं।

(3) *विचारात्मक निबंध*– विचारात्मक निबंध में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता रहती है। निबंधकार विषय का तर्कसंगत प्रतिपादन करता है। इस प्रकार के निबंधों का उद्देश्य होता है पाठक की सोचने-समझने की क्षमता को जगाना और बढ़ाना। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस कोटि के निबंधों की विशेषता बताते हुए कहा है– "शुद्ध विचारात्मक निबंधों का परम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबा कर कसे गए हों, और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध खंड के लिए हो।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ***काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, क्रोध, करुणा*** आदि निबंध विचारात्मक निबंधों के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

(4) *भावात्मक निबंध*— भावात्मक निबंधों में भावना की प्रधानता रहती है। इनका उद्देश्य पाठक के चित्त में भाव तथा रस का संचार करना होता है। सरदार पूर्णसिंह के ***मजदूरी और प्रेम, आचरण की सभ्यता, सच्ची वीरता, कन्यादान*** तथा ***पवित्रता*** आदि निबंध भावात्मक निबंधों के उदाहरण हैं। इसी प्रकार वियोगी हरि के ***विश्वमंदिर*** और ***दीनों के प्रति प्रेम*** भी भावात्मक निबंध हैं।

(5) *ललित निबंध*— ललित का अर्थ होता है सुंदर। वास्तव में ललित निबंध में निबंधकार निबंध के ऊपर बताए गए चारों प्रकारों की विशेषताओं को अपने व्यक्तित्व, चिंतन, संवेदनशीलता तथा अनुभूति के द्वारा इस तरह समन्वित कर देता है कि पाठक कहानी, नाटक और कविता का एक साथ रसास्वादन करने लगता है। निबंधकार के अपने व्यक्तित्व या उसकी वैयक्तिकता की इन निबंधों पर सुस्पष्ट छाप होती है। निबंधकार उन्मुक्त होकर पाठक से बातचीत करता हुआ अनेक विषयों, प्रसंगों को समेटता हुआ आगे बढ़ता है। स्वच्छंदता, कल्पना और लोक जीवन से लगाव ललित निबंध की विशेषताएँ हैं। निबंध के जितने भेद ऊपर बताए गए हैं, उनमें यह सर्वाधिक विषयी प्रधान होता है। इसीलिए इसे व्यक्तित्व–व्यंजक निबंध भी कहा गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के ***अशोक के फूल*** और ***आम फिर बौरा गए***, विद्यानिवास मिश्र के ***मेरे राम का मुकुट भीग रहा है*** तथा ***आँगन का पंछी और बनजारा मन,*** कुबेरनाथ राय का ***रस-आखेटक*** आदि ललित निबंध के उदाहरण हैं।

निबंध की शैलियाँ

निबंध की रचना अनेक शैलियों में होती है। इन शैलियों का विभाजन दो वर्गों में किया जा सकता है– बंध की दृष्टि से तथा स्वरूप की दृष्टि से। बंध की दृष्टि से मुख्य रूप से निबंधों में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग होता है–

(1) व्यास शैली— व्यास का अर्थ विस्तार है। व्यास शैली में विषय को अलग-अलग कोटियों में विभाजित करके विस्तार से समझाया जाता है। वर्णनात्मक या विवरणात्मक निबंधों

के लिए यह शैली अनुकूल रहती है। कभी-कभी भावात्मक निबंधों में भी लेखक इसका आश्रय लेता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के जिन विवरणात्मक निबंधों का ऊपर उदाहरण दिया गया है उनमें इस शैली का प्रयोग हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ***शिरीष के फूल*** को भी इस शैली का उदाहरण कहा जा सकता है।

(2) समास शैली— व्यास शैली के विपरीत समास शैली होती है। समास का अर्थ है संक्षेप। समास शैली में विस्तार या फैलाव के स्थान पर कसाव होता है। निबंधकार नपे-तुले शब्दों में विस्तृत विषय को संक्षेप में प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार गागर में सागर भरने का मुहावरा समास शैली के निबंधों पर लागू होता है। जिस बात को व्यास शैली में कहने के लिए कई वाक्य लग सकते हैं, उसी को समास शैली में एक-दो वाक्यों में कह दिया जाता है। इस शैली में एक-एक शब्द का प्रयोग सधा हुआ होता है। इसका प्रयोग विचार प्रधान निबंधों में किया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ***काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, रसात्मक बोध के विविध रूप*** आदि निबंधों में इस शैली का प्रयोग हुआ है।

(3) धारा शैली—धारा शैली में भावों का प्रवाह पानी की धारा के समान आगे बढ़ता है। अभिव्यक्ति बिना रुकावट के सहज रूप से होती है। निबंधकार इतना भावाकुल रहता है कि निरंतर भाव उसके मानस से व्यक्त होते जाते हैं और उनके अनुरूप भाषा स्वयं बनती चली जाती है। सरदार पूर्णसिंह के ***मजदूरी और प्रेम, आचरण की सभ्यता, सच्ची वीरता, कन्यादान*** तथा ***पवित्रता*** आदि निबंध धारा शैली के उदाहरण हैं। वियोगी हरि के ***विश्वमंदिर*** और ***दीनों के प्रति प्रेम*** भी इस शैली के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

(4) तरंग शैली— तरंग शैली में भावों की गति धारा शैली के समान निर्बाध या बिना रुकावट के नहीं होती। भावों का प्रकाशन पानी की लहरों के समान होता है, जो ऊपर उठती हैं, फिर नीचे आती हैं और अटक-अटक कर आगे बढ़ती हैं। जब निबंधकार इस प्रकार से भावाविष्ट हो जाता है, अर्थात् तरह-तरह के भावों से उसका मानस इस प्रकार भर जाता है कि वह एक भाव को सुनिश्चित रूप में प्रकट न करके विभिन्न भावों के घात-प्रत्याघात

या टकराहट को प्रकट करता है तो इस शैली का प्रयोग होता है। इस शैली में धारा शैली के समान अभिव्यक्ति की सरलता तथा सहजता नहीं रहती। पर भावों के उत्थान-पतन को निबंधकार इस प्रकार व्यक्त करता है कि पाठक उससे मुग्ध हो उठता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के ***अशोक के फूल*** और ***आम फिर बौरा गए*** आदि निबंधों में इस शैली का प्रयोग हुआ है।

(5) विक्षेप शैली— धारा शैली के विपरीत विक्षेप शैली में भावों की अभिव्यक्ति अनियमित हो जाती है। भावों के प्रकट होने में अवरोध का अनुभव होता है। जटिल मनःस्थितियों को प्रकट करने के लिए निबंधकार इस शैली का आश्रय लेते हैं। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने ***शिवशंभू के चिट्ठे*** शीर्षक से कई निबंध लिखे हैं। इन निबंधों में तरंग और विक्षेप शैलियों का प्रयोग किया गया है। भावात्मक निबंधों में धारा, तरग और विक्षेप तीनों प्रकार की शैलियाँ मिलती हैं।

कहानी

कहानी गद्य का ऐसा प्रकार है, जिसमें जीवन के किसी एक प्रसंग, किसी एक घटना या मनःस्थिति का वर्णन होता है। यह वर्णन अपने आप में पूर्ण होना चाहिए। कहानी की परिभाषा देते हुए कहा जा सकता है कि **वह ऐसा आख्यान है, जो यथार्थ का उद्घाटन करता है। आकार में छोटा होता है, जिसे एक बार में पढ़ा जा सकता है और जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव डालता है।**

आजकल लंबी कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं, जिन पर यह परिभाषा पूरी तरह लागू नहीं होती।

कहानी के तत्त्व— कहानी के निम्नलिखित तत्त्व होते हैं—

(1) कथानक— कहानी का कथानक किसी एक प्रसंग या कुछ प्रसंगों पर आधारित होता है। उसमें जीवन का एक अंश दिखाया जाता है। इसमें किसी एक घटना का चित्रण होता है अथवा किसी विशेष प्रसंग में पात्र की मनःस्थिति का चित्रण भी हो सकता है।

(2) पात्र या चरित्र-चित्रण— कहानी में पात्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं होती। पात्र दो प्रकार के होते हैं— वर्गीय पात्र तथा विशिष्ट पात्र। वर्गीय पात्र किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि

होते हैं--जैसे पूँजीपति वर्ग, श्रमिक वर्ग, निम्न वर्ग, उच्च वर्ग, अध्यापक वर्ग आदि। इनमें अपने-अपने वर्ग की विशेषताएँ रहती हैं। विशिष्ट पात्र में असाधारण या निजी विशेषताएँ होती हैं। प्रेमचंद की *कफ़न* कहानी के पात्र वर्गीय चरित्र हैं तो प्रसाद की *गुंडा* कहानी का नायक एक विशिष्ट पात्र है।

(3) संवाद-- पात्रों की आपसी बातचीत से कहानी में रोचकता और आकर्षण उत्पन्न होता है। संवादों के माध्यम से इन पात्रों की अपनी-अपनी विशेषताओं को भी पाठक जान सकता है। कहानी में बहुत लंबे-लंबे संवादों के लिए गुंजाइश नहीं होती । संवाद छोटे परंतु मन पर छाप छोड़ने वाले होने चाहिए।

(4) वातावरण-- कहानी में जिस प्रकार का कथानक है, उसके अनुरूप वातावरण का चित्रण होना चाहिए। यह वातावरण सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक आदि कई प्रकार का हो सकता है। आधुनिक शब्दावली में इसे परिवेश कहा जाता है।

(5) भाषा-शैली-- कहानीकार अपनी रुचि, कथानक तथा वातावरण के अनुरूप विभिन्न प्रकार की शैलियों को कहानी में अपनाता है। रचना विधान की दृष्टि से मुख्य रूप से कहानी में वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, पत्र और डायरी आदि शैलियों का प्रयोग होता है। लेखक अपनी रुचि तथा कहानी के कथानक, देशकाल और वातावरण के अनुसार काव्यात्मक, अलंकारप्रधान, या सरल बोलचाल की भाषा का उपयोग करता है।

(6) उद्देश्य-- कहानी का प्रमुख उद्देश्य है कलात्मक ढंग से जीवन की व्याख्या करना। कहानीकार किसी घटना या प्रसंग के चित्रण द्वारा किसी विशेष भाव या विचार का संप्रेषण कर किसी समस्या की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करता है और सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है। साथ ही कहानी और उपन्यास का एक उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना भी है।

प्रत्येक कहानी में ये तत्त्व न्यूनाधिक रूप में रहते हैं। इनमें से कुछ तत्त्व निबंध में भी रहते हैं। कहानी और निबंध में मुख्य अंतर यह है कि निबंध में प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट रहता है। कहानी में उसका प्रयोजन प्रायः कलात्मक विन्यास में छिपा रहता है।

कहानी के प्रकार

विषय की दृष्टि से कहानी मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक, सामाजिक, वैज्ञानिक आदि कई प्रकार की हो सकती है। जैनेंद्र कुमार की कहानियाँ मनोवैज्ञानिक कहानियों के अच्छे उदाहरण हैं। प्रसाद की *ममता* ऐतिहासिक कहानी है। प्रेमचंद की *बड़े घर की बेटी* एक पारिवारिक कहानी है। प्रेमचंद की ही *कफ़न* एक सामाजिक कहानी है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जयंत नार्लीकर ने वैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। कथानक की दृष्टि से कहानी के तीन प्रकार माने गए हैं– घटना प्रधान, चरित्र प्रधान और वातावरण प्रधान।

उपन्यास

कहानी के समान उपन्यास भी क़था-प्रधान विधाओं में से एक है। यह आधुनिक विधा है। यह माना जाता है कि आज के साहित्य में महाकाव्य का स्थान उपन्यास ने ले लिया है। इसलिए इसे मानव जीवन का गद्यात्मक महाकाव्य भी कहा जाता है। यह कहानी की अपेक्षा आकार और कथानक के प्रसार में विशाल होता है। घटनाओं की इसमें बहुलता होती है, पर प्रत्येक घटना अन्य घटना से कार्य-कारण के संबंध से जुड़ी होती है। उपन्यास में कहानी की अपेक्षा घटनाओं की भी विविधता रहती है, सभी घटनाएँ एक सूत्र में जुड़ी होती हैं। इसमें जीवन का समग्र और यथार्थ रूप प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यास में समाज, इतिहास और संस्कृति का व्यापक अध्ययन रचनात्मक रूप ग्रहण करता है।

बाबू गुलाबराय ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है– "उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं के द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"

उपन्यास के तत्त्व

कहानी के समान ही उपन्यास में भी निम्नलिखित तत्त्व आवश्यक हैं— कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, देश-काल और वातावरण, शैली तथा उद्देश्य। उपन्यास में कथा का आरंभ या भूमिका, संघर्ष या प्रयास, चरम बिंदु, आरोह (ऊपर चढ़ना) तथा अवसान या समाप्ति– इन पाँच स्थितियों के द्वारा प्रस्तुतीकरण किया जाता है। कहानी के पात्रों की तुलना में उपन्यास के पात्र जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से संबंधित होते हैं। पात्रों का चरित्र-चित्रण उपन्यास में तीन प्रकार से किया जाता है– (1) विभिन्न परिस्थितियों या घटनाचक्र के बीच किसी पात्र के क्रियाकलाप का चित्रण करके, (2) स्वयं उपन्यासकार के द्वारा पात्र की मनःस्थिति व मनोविज्ञान का विश्लेषण प्रस्तुत करके तथा (3) दूसरे पात्रों के मुख से किसी पात्र की विशेषताओं का वर्णन करा कर।

उपन्यास के प्रकार

उपन्यास के भेद दो आधारों पर किए जाते हैं– विषयवस्तु के आधार पर तथा शिल्प के आधार पर। विषयवस्तु के आधार पर मुख्य रूप से उपन्यास के ये भेद माने जाते हैं– सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक तथा जीवनी परक। प्रेमचंद के ***गबन*** और ***गोदान*** जैसे उपन्यास सामाजिक उपन्यास हैं। यशपाल का ***झूठा सच,*** भगवतीचरण वर्मा का ***टेढ़े मेढ़े रास्ते*** तथा भीष्म साहनी का ***तमस*** राजनैतिक उपन्यास के उदाहरण कहे जा सकते हैं। वृंदावनलाल वर्मा के ***झाँसी की रानी*** तथा ***मृगनयनी*** ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इलाचंद्र जोशी का ***संन्यासी*** मनोवैज्ञानिक उपन्यास है तो फणीश्वर नाथ 'रेणु' का ***मैला आँचल*** और ***परती परिकथा*** आंचलिक। अमृतलाल नागर का ***मानस का हंस*** और गिरिराज किशोर का ***पहला गिरमिटिया*** जीवनी परक उपन्यास के उदाहरण हैं।

शिल्प के आधार पर उपन्यास के प्रमुख भेद हैं– घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, घटना-चरित्र प्रधान और वातावरण प्रधान। देवकीनंदन खत्री का उपन्यास ***चंद्रकांता*** घटना प्रधान उपन्यास का उदाहरण है। इलाचंद्र जोशी का ***संन्यासी*** उपन्यास चरित्र प्रधान है और रेणु का ***मैला आँचल*** वातावरण प्रधान ।

कहानी तथा उपन्यास में अंतर

कहानी और उपन्यास दोनों गद्य की विधाएँ हैं, दोनों में ही कथा होती है। दोनों में घटनाएँ, पात्र और मनःस्थितियों का चित्रण होता है। पर कहानी में जीवन का एक प्रसंग, एक घटना, होती है। पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती । उपन्यास में कथानक कहानी की तुलना में विस्तृत और बहुमुखी होता है। पात्रों की संख्या प्रायःकहानी की तुलना में अधिक होती है। उपन्यास की कथा में कहानी की तुलना में विविधता और विस्तार अधिक होता है। इसी प्रकार कहानी की अपेक्षा उपन्यास का देश-काल और परिवेश अधिक विस्तृत हुआ करता है। कहानी तथा उपन्यास दोनों स्वतंत्र विधाएँ हैं। लंबी कहानी को उपन्यास या छोटे उपन्यास को लंबी कहानी नहीं कहा जा सकता।

संस्मरण

संस्मरण का अर्थ है सम्यक् (भलीभाँति) स्मरण (याद करना)। किसी स्मरणीय व्यक्ति या घटना की यादों को लेकर किया गया चित्रण संस्मरण है। संस्मरण के लिए लेखक का स्मरणीय व्यक्ति के साथ व्यक्तिगत संबंध होना आवश्यक है। यह आत्मपरक हुआ करता है। लेखक उत्तम पुरुष (मैं, हम) का प्रयोग करता हुआ व्यक्ति या घटना का वर्णन करता है।

राहुल सांकृत्यायन का ***शांतिनिकेतन में*** संस्मरण का अच्छा उदाहरण है। महादेवी वर्मा ने ***पथ के साथी*** शीर्षक पुस्तक में अपने समय के साहित्यकारों पर मार्मिक संस्मरण लिखे हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी, बनारसीदास चतुर्वेदी के संस्मरण भी प्रसिद्ध हैं।

रेखाचित्र

रेखाचित्र मूल रूप से चित्रकला का शब्द है। रेखाओं के द्वारा बना हुआ चित्र रेखाचित्र है। चित्र में रेखाएँ जो काम करती हैं, वही काम साहित्य में शब्द करते हैं। जब लेखक शब्दों के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का इस प्रकार वर्णन करता है कि आँखों के आगे उस व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का चित्र खिंचता चला जाए, तो इसे रेखाचित्र कहते हैं।

इसका दूसरा नाम शब्दचित्र भी है। रेखाचित्र की विशेषता यह होती है कि इसमें साहित्यकार अपनी कल्पना या अनुभूति का अलग से कोई रंग नहीं भरता, जिस व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का वर्णन करना है, उसका हू-ब-हू चित्र अंकित कर देता है। संस्मरण और रेखाचित्र दोनों में ही वर्ण्य विषय काल्पनिक न होकर यथार्थ होता है। पर संस्मरण में आत्मपरकता अधिक होती है और रेखाचित्र में कम ।

महादेवी वर्मा की कृति ***अतीत के चलचित्र*** तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की ***माटी की मूरतें*** नामक पुस्तक रेखाचित्र के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

रेखाचित्र तथा संस्मरण में अंतर

रेखाचित्र तथा संस्मरण एक दूसरे से मिलती-जुलती विधाएँ हैं। रेखाचित्र की भाँति संस्मरण में भी बीती हुई घटना का इस तरह वर्णन किया जाता है कि उसका हू-ब-हू चित्र आँखों के आगे अंकित हो जाता है। पर रेखाचित्र विषय प्रधान होता है और संस्मरण विषयी प्रधान। संस्मरण प्रायः प्रसिद्ध व्यक्ति के विषय में ही लिखा जाता है। रेखाचित्र के लिए यह आवश्यक नहीं है। रेखाचित्र के विषय विविध हो सकते हैं, संस्मरण का विषय कोई विशेष व्यक्ति या विशेष घटना ही होती है।

जीवनी

जीवनी में लेखक किसी व्यक्ति का जीवन चरित प्रस्तुत करता है। इसमें प्रायः उस व्यक्ति की जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी घटनाएँ होती हैं। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उसकी उपलब्धियों का वर्णन रहता है। संस्मरण तथा रेखाचित्र के समान इसका विषय भी काल्पनिक न होकर यथार्थ हुआ करता है। जीवनी न इतिहास है न उपन्यास। पर इन दोनों विधाओं की विशेषताएँ इसमें समाहित हो जाती हैं।

हिंदी में लिखी गई जीवनियों के कुछ श्रेष्ठ उदाहरण हैं— अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचंद की जीवनी ***कलम का सिपाही***, रामविलास शर्मा रचित महाकवि निराला की जीवनी ***निराला की साहित्य साधना*** (भाग-एक) और विष्णु प्रभाकर कृत बंगला के प्रसिद्ध साहित्यकार शरतचंद्र की जीवनी ***आवारा मसीहा*** आदि।

आत्मकथा

जीवनी का एक रूप आत्मकथा है। लेखक उत्तम पुरुष का प्रयोग करते हुए अपनी जीवनी लिखता है तो वही आत्मकथा बन जाती है। हिंदी में लिखी गई कुछ आत्मकथाओं के उदाहरण हैं— डॉ. राजेंद्रप्रसाद की ***आत्मकथा,*** राहुल सांकृत्यायान की ***मेरी जीवन-यात्रा,*** यशपाल का ***सिंहावलोकन,*** हरिवंशराय बच्चन की ***क्या भूलूँ, क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर*** और ***दस द्वार से सोपान तक*** शीर्षक से चार खंडों में प्रकाशित आत्मकथा।

यात्रावृत्त या यात्रा वृत्तांत

यात्रावृत्त संस्मरण और रेखाचित्र से मिलती-जुलती विधा है। इसमें लेखक अपनी किसी यात्रा का रोचक वर्णन करता है, जिससे जिस स्थान की यात्रा की गई है, उसकी ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं से पाठक परिचित होते हैं। सौंदर्य का बोध और कौतूहल जगाए रखना— ये दोनों यात्रावृत्त की खूबियाँ हैं। यात्रावृत्त विषय प्रधान भी हो सकता है और विषयी प्रधान भी। देश-काल के विषय में पाठक की जानकारी बढ़ाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

हिंदी में यात्रावृत्त के उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पुस्तकों के नाम गिनाए जा सकते हैं— राहुल सांकृत्यायन की ***मेरी यूरोप यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा,*** अज्ञेय की ***अरे! यायावर रहेगा याद*** तथा ***एक बूँद सहसा उछली*** और अमृतलाल बेगड़ की ***सौंदर्य की नदी नर्मदा*** आदि।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज एक नवीन विधा है। रिपोर्ताज मूलरूप से फ्रेंच भाषा का शब्द है। हाल में ही घटी तथा लेखक के द्वारा प्रत्यक्ष देखी गई घटनाओं का अंतरंग अनुभव के साथ किया गया वर्णन रिपोर्ताज है। अंग्रेज़ी में इसी से मिलता-जुलता शब्द रिपोर्ट है। पर रिपोर्ट सूचनात्मक होती है, रिपोर्ताज में किसी घटना का वर्णन लेखक के व्यक्तित्व के स्पर्श से आकर्षक बन जाता है। रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी तथा आत्मकथा के समान इसका विषय भी यथार्थ हुआ करता है।

हिंदी के कुछ उल्लेखनीय रिपोर्ताज हैं— फणीश्वरनाथ रेणु का ***ऋण जल धन जल,*** धर्मवीर भारती का ***ब्रह्मपुत्र के मोर्चे पर*** आदि।

डायरी

डायरी को रोज़नामचा, दैनिकी या दैनंदिनी भी कहा जाता है। कोई लेखक प्रतिदिन घटी हुई घटनाओं, अनुभवों और प्रतिक्रियाओं को अपनी नोटबुक में अंकित करता है तो उससे डायरी बनती है। इसमें संस्मरण, निबंध, यात्रावृत्त आदि अनेक विधाओं की विशेषताएँ घुलमिल जाती हैं। लेखक की व्यक्तिगत अनुभूतियों या विचारों की छाप इसमें सदैव बनी रहती है। यह एक विषयी प्रधान विधा है।

हिंदी में गांधीजी के सहयोगी महादेव भाई की डायरी प्रकाशित है। इसी प्रकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने गुप्त जी की डायरी का संपादन किया है। मोहन राकेश, शमशेरबहादुर सिह, त्रिलोचन आदि अनेक साहित्यकारों ने डायरियाँ लिखी हैं, जो पुस्तकाकार प्रकाशित हैं।

पत्र-साहित्य

पत्र एक व्यक्ति के द्‌वारा दूसरे व्यक्ति को लिखे जाते हैं। इसमें लेखक अपने मन की बात खोलकर कहता है। यह संभव है कि पत्र लिखने वाले ने सार्वजनिक रूप से छपवाने के इरादे से पत्र न लिखे हों। पर कभी-कभी ऐसे पत्र साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान तथा समाज के लिए एक धरोहर बन जाते हैं। उदाहरण के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जेल में रहकर इंदिरा गाधी को अनेक पत्र लिखे थे, जिनमें उन्होंने अपनी बेटी के ज्ञानवर्धन के लिए समाज, इतिहास, दर्शन आदि की जानकारी दी थी। इन पत्रों का पुस्तक के रूप में संकलन ***पिता के पत्र पुत्री के नाम*** शीर्षक से प्रकाशित हैं। कभी-कभी किसी साहित्यकार या महापुरुष के पत्रों का संपादन दूसरा साहित्यकार करता है। उदाहरण के लिये पद्‌मसिंह शर्मा के पत्रों का सपादन बनारसीदास चतुर्वेदी ने किया है। महावीरप्रसाद द्‌विवेदी के पत्र ***'पत्रावली'*** नामक पुस्तक में संकलित हैं। केदारनाथ अग्रवाल तथा रामविलास शर्मा ने एक दूसरे को

जो पत्र लिखे थे, वे ***मित्र-संवाद*** पुस्तक में प्रकाशित हैं। नेमिचंद्र जैन और मुक्तिबोध के बीच हुआ पत्र-व्यवहार ***पाया पत्र तुम्हारा*** शीर्षक पुस्तक में सामने आया है।

साक्षात्कार

साक्षात्कार भी एक आधुनिक गद्य विधा है। इसे भेंटवार्ता भी कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसके लिए इंटरव्यू शब्द का प्रयोग होता है। यह विधा मूल रूप से पत्रकारिता की देन है। पर साहित्य में इसने अब स्थान बना लिया है। किसी विशिष्ट व्यक्ति से जीवन, कला, साहित्य, संस्कृति या उसकी अपनी रचनाओं अथवा कार्यों पर बातचीत साक्षात्कार है।

साक्षात्कार के लिए जिस व्यक्ति से साक्षात्कार लेना है, उसके संबंध में साक्षात्कार कर्ता को प्रारम्भिक जानकारी होनी चाहिए। उसे साक्षात्कार के समय पूछे जाने वाले प्रश्नों को विषयानुसार क्रमबद्ध कर लेना चाहिए।

श्रीकात वर्मा ने विश्व के महत्त्वपूर्ण कवियों या साहित्यकारों से जो साक्षात्कार लिए वे ***बीसवीं शताब्दी के अँधेरे में*** शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। ***मेरे साक्षात्कार*** शीर्षक से नागार्जुन तथा रामविलास शर्मा के साक्षात्कार प्रकाशित हैं।

फ़ीचर

फ़ीचर अंग्रेज़ी का शब्द है। इसके अर्थ हैं— रूपक, मुखाकृति, नाट्यरूपक तथा आकृति। फ़ीचर का उपयोग साहित्य, पत्रकारिता, रेडियो तथा सिनेमा में होता है। यह आधुनिक गद्य विधा है। इसमें किसी घटना या दृश्य का मनोरंजक वर्णन किया जाता है और ये घटनाएँ और दृश्य कहानी के प्रसंगो की तरह पाठक के चित्त में झलक उठते हैं। फीचर सच्ची घटना पर आधारित होता है। फ़ीचर के गुण हैं— वास्तविकता, प्रत्यक्ष अनुभव तथा कल्पनापूर्ण और रोचक विवरण। रिपोर्ताज तथा फ़ीचर में यह अंतर है कि रिपोर्ताज की अपेक्षा फ़ीचर में चित्रात्मकता, भावना और कल्पना का समावेश अधिक रहता है।

आलोचना

आलोचना का अर्थ है किसी भी साहित्यिक रचना को अच्छी तरह देखना या परखना तथा परखकर उसके गुण-दोषों का निर्णय करना। आलोचना को समालोचना भी कहते हैं। समीक्षा शब्द भी इसके लिए प्रयोग में लाया जाता है।

आलोचना एक विचार-प्रधान गद्य विधा है। जब साहित्य या साहित्यकार का इस प्रकार विवेचन किया जाता है कि पाठक उस रचना के विभिन्न पक्षों से परिचित हो सकें, उसके गुण-दोषों को समझ सकें तथा रचनाकार की दृष्टि को भी जान सकें तो यह आलोचना या समालोचना कहलाएगी।

साहित्य की आलोचना लिखने वाले या आलोचना करने वाले मर्मज्ञ व्यक्ति को आलोचक, समालोचक या समीक्षक कहा जाता है। ड्राइडन के अनुसार— "आलोचना ऐसी कसौटी है, जिसकी सहायता से किसी कृति का मूल्यांकन किया जाता है।"

डॉ. श्यामसुंदर दास ने आलोचना का लक्षण यह दिया है— "साहित्य के क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुण एवं दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"

साहित्यशास्त्र और आलोचना में अंतर— पहले अध्याय में साहित्यशास्त्र के बारे में बताया गया है। साहित्यशास्त्र और आलोचना में यह अंतर है कि साहित्यशास्त्र में सिद्धांतों का विवेचन होता है और आलोचना में उन सिद्धांतों के आधार पर साहित्य की परख की जाती है अथवा स्वतंत्र रूप से भी किसी साहित्यिक कृति का विवेचन किया जाता है।

आलोचना के उद्देश्य— साहित्यिक आलोचना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं— किसी साहित्य की उपलब्धियों पर विचार, किसी एक रचना के गुण और दोष का विवेचन, कवियों या रचनाकारों की अलग-अलग विशेषताओं का वर्णन तथा रचना का आकलन या उसका मूल्यांकन।

आलोचना के भेद— आलोचना में किसी रचना के बारे में आलोचक अपना निर्णय दे सकता है। वह यह बता सकता है कि रचना अच्छी है या उसमें कमियाँ हैं। आलोचक यह भी कर सकता है कि वह रचना को अच्छी या बुरी न कहे, वह रचना की केवल व्याख्या प्रस्तुत कर दे जिससे आलोचना का पाठक रचना के गुण-दोष को स्वयं समझ सके। इस प्रकार आलोचना दो प्रकार की हो जाती है— निर्णयात्मक तथा व्याख्यात्मक।

आलोचना में समालोचक व्यक्तिगत राय के आधार पर किसी रचना का विश्लेषण नहीं करता, न व्यक्तिगत राय के कारण वह उसे अच्छी या बुरी बताता है। आलोचना में रचना को समझने और उसका विश्लेषण करने के लिए वैज्ञानिक और तार्किक पद्धति अपनाई जाती है। पद्धति के आधार पर आलोचना के कई प्रकार हो सकते हैं— प्रभाववादी आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना आदि।

प्रभाववादी आलोचना को प्रभावाभिव्यंजक आलोचना भी कहा गया है। इसमें रचना का जो प्रभाव आलोचक के मन पर पड़ा है, उसे वह सहज रूप में व्यक्त कर देता है। व्याख्यात्मक आलोचना में कृति के मर्म का उद्घाटन किया जाता है। निर्णयात्मक आलोचना में आलोचक रचना का मूल्यांकन करके बताता है कि वह उत्तम है या हीन है। तुलनात्मक आलोचना में किसी कृति की अन्य कृति या कृतियों से तुलना करते हुए उसकी समीक्षा की जाती है।

दृश्य साहित्य की विधाएँ

दृश्य साहित्य का स्वरूप— प्राचीन परंपरा में दृश्य साहित्य को दृश्य काव्य कहा गया है। ऐसा काव्य या साहित्य जिसे हम रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रदर्शित होते हुए देख सकें, दृश्य काव्य या दृश्य साहित्य है। यद्यपि दृश्य काव्य या दृश्य साहित्य को रंगमंच पर अभिनीत होते हुए जब हम देखते हैं तो उसके संवादों, गीतों को सुनते भी हैं। परंतु इसमें दृश्य की प्रधानता रहती है, इसलिए इसे दृश्य काव्य कहा जाता है, श्रव्य काव्य नहीं।

रूपक — दृश्य काव्य या दृश्य साहित्य का ही दूसरा नाम रूपक है। जिसका रूप मंच पर प्रदर्शित किया जा सके, साहित्य की ऐसी विधा रूपक है। इसका मंच पर अभिनय (अभिनयन) किया जाता है, इसलिए इसको नाटक भी कहते हैं।

नाटक के तत्त्व

भारतीय परंपरा के अनुसार नाटक (रूपक) के निम्नलिखित तत्त्व गिनाए गए हैं–

(1) वस्तु – कथावस्तु या कहानी। इसे इतिवृत्त भी कहते हैं। कथावस्तु दो प्रकार की होती है– मुख्य और प्रासंगिक। रामायण की कहानी पर नाटक लिखा जाए तो उसमें राम का वनवास, सीताहरण, रावणवध इस प्रकार के प्रसंग मुख्य कथा कहलाएँगे। इनके साथ मंथरा और कैकेयी का संवाद, जटायु का वध– इस प्रकार के प्रसंग प्रासंगिक कथा के अंग होंगे।

(2) पात्र – नाटक के नायक, नायिका तथा अन्य सभी चरित्र पात्र कहे जाते हैं।

(3) रस – नाटक से प्राप्त होने वाली सौंदर्यात्मक अनुभूति रस है।

(4) अभिनेयता– नाटक रंगमंच पर खेलने के लिए होता है। अभिनेता अपनी वाणी, शारीरिक चेष्टाओ, वेश-भूषा आदि के द्वारा उसे प्रस्तुत करता है। यह प्रस्तुति नाटक का अभिनय है। प्रत्येक नाटक में अभिनेयता होनी चाहिए।

(5) संगीत, गीत तथा नृत्य – नाटक की प्रस्तुति में अभिनय के साथ आवश्यकतानुसार इन तत्त्वों का प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक नाटक में निम्नलिखित तत्त्व निर्धारित किए गए हैं–

(1) कथावस्तु या कथानक – नाटक का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक या काल्पनिक हो सकता है। भारतीय नाट्य चिंतन में कथावस्तु के विकास की पाँच अवस्थाएँ मानी गई हैं– प्रारंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम। आधुनिक काल में सामान्य तौर पर कथानक के विकास की चार स्थितियाँ – आरंभ, विकास, संघर्ष तथा चरम सीमा– स्वीकार की गई हैं। परंतु आजकल के नाटकों में कथानक के विकास का यह क्रम टूट रहा है।

(2) पात्र या चरित्र-चित्रण – नाटक में नायक, प्रतिनायक, नायिका आदि पात्र होते हैं। बिना पात्रों के कोई नाटक संभव नहीं है।

(3) संवाद या कथोपकथन – जिस प्रकार नाटक बिना पात्रों या चरित्रों के नहीं हो सकता उसी प्रकार इन पात्रों में परस्पर सवाद या बातचीत के बिना भी नाटक संभव नहीं है।

संवाद दो प्रकार के होते हैं — स्वगत तथा प्रकट। स्वगत कथन का आशय है कोई पात्र अपने मन में जो कुछ सोचता है, उसे पात्र के मुँह से कहलवाना। मंचन के समय यह मान लिया जाता है कि किसी भी पात्र के स्वगत ,कथन को नाटक का कोई दूसरा पात्र नहीं सुन रहा है, केवल दर्शक उसे सुन रहे हैं। प्रकट कथन मंच पर खड़े किसी दूसरे पात्र को या कई पात्रों को संबोधित होता है और इसे संबोधित पात्र या पात्रों के अलावा दूसरे पात्र भी सुन सकते हैं।

(4) देश-काल और वातावरण — जिस प्रकार की कथावस्तु नाटक में ली गई है, उसके अनुसार देश-काल तथा वातावरण का चित्रण नाटककार को करना चाहिए। यह पात्रों के रहन-सहन, वेष-भूषा और रीति-रिवाज़ आदि के चित्रण द्वारा सभव है।

(5) भाषा-शैली — नाटक के संवाद किसी न किसी भाषा में ही होते हैं। नाटक की भाषा पात्र, कथा तथा देश-काल और वातावरण के अनुरूप होती है।

(6) उद्देश्य — नाटक एक ऐसी विधा है, जिसका प्रदर्शन कई लोग एक साथ देखते हैं। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि नाटक समाज के लिए किसी प्रयोजन की पूर्ति करे। प्रत्येक नाटक में नाटककार दर्शकों को कुछ संदेश देना चाहता है या नाटक के माध्यम से उनका ध्यान किसी समस्या की ओर आकृष्ट करना चाहता है।

(7) रगनिर्देश — अभिनेताओं के लिए नाटक की प्रस्तुति के समय कब क्या करना है, इस प्रकार के निर्देश रंगनिर्देश कहे जाते हैं।

ग्रीक परंपरा में नाटक के निम्नलिखित तत्त्व माने गए हैं—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन (संवाद), देश-काल, उद्देश्य तथा शैली। ग्रीक परंपरा में नाटक मे तीन प्रकार की अन्विति (एकता) भी ज़रूरी मानी गई है— देश या स्थान की अन्विति, काल या समय की अन्विति तथा कार्य या घटनाओं की अन्विति। इसे संकलन त्रय भी कहा जाता है।

नाटक का विभाजन अंकों तथा दृश्यों में किया जाता है। अंकों की संख्या की दृष्टि से नाटक दो प्रकार के होते हैं— एकाकी नाटक तथा अनेकांकी नाटक। अनेकांकी नाटक

को पूर्णाकार नाटक भी कहते हैं। इसमें कम से कम दो अक होते हैं। पूर्णाकार नाटक को केवल नाटक भी कहा जाता है। इसका विभाजन कई अंकों में होता है। एक अंक के भीतर कई दृश्य रह सकते हैं। एकांकी नाटक में एक ही अक होता है, जिसमें एक या अनेक दृश्य हो सकते हैं।

एकांकी नाटक – पुराने नाटकों में प्रहसन, भाण आदि रूपक एक अक के होते थे। आधुनिक भाषाओं मे एकांकी नाटक, नाटक की एक स्वतन्त्र विधा मानी जाती है। एकांकी नाटक में केवल एक अंक होता है। इस एक अंक को कई दृश्यों में विभाजित किया जा सकता है। एकांकी नाटक में जीवन की कोई एक घटना, एक परिस्थिति, एक समस्या या कोई एक प्रसग प्रस्तुत किया जाता है। ऊपर तीन प्रकार की अन्विति (एकता) बताई गई है। एकांकी नाटक में सामान्यतया ये तीनों प्रकार की अन्वितियाँ होती हैं।

एकांकी तथा नाटक मे अंतर– जो अंतर कहानी और उपन्यास में है, या जो अंतर महाकाव्य और खडकाव्य में है, वही अंतर एकांकी तथा नाटक मे समझना चाहिए। नाटक की तुलना में एकाकी में पात्रों की संख्या कम होती है। इसमें घटनाओ या पूर्वा पर प्रसंगों की भी विविधता इतनी नहीं होती जितनी नाटक में। एकाकी में किसी एक घटना या प्रसंग की ही मार्मिक प्रस्तुति करके समग्र प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

गीति नाट्य – गीति नाट्य के संवाद गीतो में रहते हैं। इसमे काव्यात्मकता तथा संगीत की प्रधानता होती है। जयशंकर प्रसाद का ***करुणालय*** इसका उदाहरण है।

काव्य नाटक – गीति नाट्य के समान ही काव्य नाटक में सारे संवाद पद्य में या कविता मे रहते है। धर्मवीर भारती का ***अंधायुग,*** नरेश मेहता का ***संशय की एक रात,*** दुष्यंत कुमार का ***एक कंठ विषपायी,*** भारतभूषण अग्रवाल का ***अग्निलीक*** आदि इसके उदाहरण हैं।

रेडियो रूपक – रेडियो रूपक नाटक की नई विधा है। इसमें दृश्य तत्त्व नहीं रहता। संवादों के साथ विभिन्न प्रकार की पार्श्व ध्वनियों की प्रस्तुति इस प्रकार की जाती है कि श्रोता दृश्य की

कल्पना कर सकें। इसे ध्वनिरूपक भी कहते हैं। सुमित्रानंदन पंत का *रजतशिखर*, भगवतीचरण वर्मा का *तारा* आदि इसके उदाहरण हैं। चिरंजीत के रेडियो नाटक भी लोकप्रिय रहे हैं।

नृत्य-संगीत-काव्य रूपक — नृत्य-संगीत-काव्य रूपक या बैले में सारे संवाद परदे के पीछे से प्रस्तुत किए जाते हैं। ये संवाद कविता या गीतों में होते हैं। जयशंकर प्रसाद की *कामायनी* तथा इस प्रकार के अन्य महाकाव्यों और खंडकाव्यों को बैले के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

अध्याय 3

शब्दशक्ति विवेचन

शब्दशक्ति का स्वरूप

हम भाषा के द्वारा परस्पर वार्तालाप करते हैं। भाषा में ही साहित्य की रचना होती है। भाषा वाक्यों से बनती है और वाक्य शब्दों से बनते हैं। शब्द भाषा में इस्तेमाल होने वाली सबसे छोटी सार्थक इकाई है जो अपने आप में पूर्ण होती है। उदाहरण के लिए– कमल, पुस्तक, माता, पिता – ये शब्द हैं। इनमें से हर शब्द किसी वस्तु या किसी व्यक्ति को बताता है। सफेद, काला, छोटा, बड़ा– ये भी शब्द हैं, जो किसी गुण को बताते हैं। इसी प्रकार जाना, करना, सोना, हँसना – ये शब्द हैं। परंतु ये शब्द वस्तु या व्यक्ति को नहीं, क्रियाओं को बताते हैं। राम, गोविंद, रहमान, सलीम, राधा, सीता– ये भी शब्द हैं और ये व्यक्ति विशेष को बताते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक भाषा में शब्द चार प्रकार के होते हैं– कुछ शब्द जातिवाचक होते हैं, कुछ गुणवाचक, कुछ क्रियावाचक और कुछ व्यक्तिवाचक। शब्द किसी भी प्रकार का हो, वह अपना अर्थ अवश्य रखता है। बिना अर्थ के शब्द नहीं हो सकता और बिना शब्द के अर्थ नहीं हो सकता। प्रत्येक शब्द में अपना अर्थ बताने की क्षमता रहती है। इसी क्षमता को साहित्यशास्त्र में शक्ति कहा गया है। शब्दशक्ति की परिभाषा यह दी जा सकती है– **शब्द की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा शब्द से किसी भी अर्थ का ज्ञान होता है, शब्दशक्ति कहलाती है।**

शब्दशक्ति के प्रकार

हमने देखा कि प्रत्येक शब्द में अपना अर्थ बताने की क्षमता होती है। परंतु इन शब्दों को सुनकर या पढ़कर हम अर्थ का ज्ञान अलग-अलग प्रक्रियाओं से करते हैं। इस प्रक्रिया की दृष्टि से शब्दशक्ति के तीन भेद हैं– अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना।

शब्दशक्ति या अर्थ को बताने की क्षमता के आधार पर शब्द तीन प्रकार के हैं– वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक। किसी शब्द को सुनते ही सबसे पहले हम उससे जिस अर्थ को समझते हैं, वह अर्थ वाच्य अर्थ कहलाता है। यह वाच्य अर्थ भाषा को बोलते समय, सुनते समय या लिखते-पढ़ते समय हमें पहले से मालूम होता है। वाच्य अर्थ को बताने वाला शब्द वाचक शब्द कहलाता है। कभी-कभी वाक्य में शब्द के वाच्य अर्थ को छोड़कर हम दूसरा अर्थ ले लेते हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि वाच्य अर्थ संगत नहीं है। यह दूसरा अर्थ लक्ष्य अर्थ होता है, इसे बताने वाला शब्द लाक्षणिक कहलाता है। वाच्य और लक्ष्य अर्थ के अतिरिक्त जब अन्य अर्थ (साहित्य के प्रसंग में) वक्ता, देश, काल आदि के आधार पर लिया जाता है तो यह अन्य अर्थ व्यंग्य अर्थ कहलाता है। इसका बोध कराने वाली शक्ति व्यंजना है और इस व्यंजना शक्ति से व्यंग्य अर्थ को बताने वाला शब्द व्यंजक कहलाता है।

शब्द और उससे संबंधित शक्ति को इस प्रकार समझा जा सकता है–

शब्द	**अर्थ**	**शक्ति**
वाचक	वाच्य	अभिधा
लाक्षणिक	लक्ष्य	लक्षणा
व्यंजक	व्यंग्य	व्यंजना

अभिधा – शब्द के पहले, पूर्वविदित अर्थ को बताने वाली शब्दशक्ति अभिधा है। अभिधा जिस अर्थ को बताती है, वह वाच्य अर्थ या अभिधेय अर्थ कहलाता है।

निराला की ***वह तोड़ती पत्थर*** कविता के आरंभ की ये पंक्तियाँ अभिधा के प्रयोग का उदाहरण कही जा सकती हैं–

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

इन पंक्तियों में कवि शब्दों से सीधे-साधे जो अर्थ प्रकट करता है, वही अर्थ कविता का है। कवि ने पत्थर तोड़ती हुई स्त्री को इलाहाबाद के पथ पर देखा ।

लक्षणा— *जब वाच्य अर्थ या अभिधेय अर्थ लागू न हो तो लक्षणा से अन्य अर्थ लिया* जाता है। लक्षणा के लिए तीन नियम हैं—

(1) इसमें मुख्य अर्थ या अभिधेय अर्थ लागू नहीं होता है वह बाधित हो जाता है।

(2) जब मुख्य अर्थ बाधित हो जाता है तो उसके स्थान पर दूसरा अर्थ लिया जाता है, परंतु यह दूसरा अर्थ अनिवार्य रूप से मुख्य अर्थ से संबंधित होता है।

(3) मुख्य अर्थ को छोड़कर या उसके स्थान पर दूसरे अर्थ को अपनाने के पीछे या तो कोई रूढ़ि होती है अथवा कोई प्रयोजन।

लक्षणा का प्रयोग हम दैनिक बोलचाल में भी करते हैं। जब किसी सत्यवादी व्यक्ति को प्रशंसा में कहा जाता है कि 'आप तो एकदम राजा हरिश्चंद्र हैं'— तो वह व्यक्ति राजा हरिश्चंद्र नहीं है, अतः वाच्य अर्थ यहाँ लागू नहीं होता। तब सुनने वाला 'आप हरिश्चंद्र के समान सत्यवादी हैं', —यह संबंधित अर्थ ले लेता है। इस प्रकार इस वाक्य में संबोधित व्यक्ति की पूरी तरह सत्यनिष्ठा बताने के लिए लक्षणा की गई है। इसी तरह जब किसी व्यक्ति को *कुशल या प्रवीण कहा जाता है, तो वाच्य अर्थ लागू नहीं होता क्योंकि* 'कुशल' *शब्द का अर्थ* तो 'कुश लाने वाला' होता है। इसी प्रकार 'प्रवीण' का अर्थ भी 'वीणा बजाने में चतुर' होता है। किंतु यहाँ दोनों शब्दों के वाच्य अर्थ को छोड़कर रूढ़ि से लक्ष्य अर्थ लिया जाता है और दोनों का अर्थ 'चतुर' हो जाता है।

लक्षणा का लक्षण — लक्षणा का लक्षण इस प्रकार किया गया है कि मुख्य अर्थ में बाधा होने पर जिस शक्ति के द्वारा किसी रूढ़ि या क़िसी प्रयोजन के आधार पर मुख्य अर्थ से संबंधित अन्य अर्थ लिया जाए, वह लक्षणा है।

उदाहरण— निराला की ऊपर उद्धृत कविता (वह तोड़ती पत्थर) की ही अंतिम पंक्तियाँ हैं—

उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार
देख कर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।

दृष्टि मार नहीं खाती, मनुष्य मार खाता है, इसी प्रकार दृष्टि नहीं रोती। रोना सचेतन प्राणी का कर्म है। इसलिए दृष्टि, 'जो मार खा रोई नहीं'— इस कथन में अभिधेय अर्थ या मुख्य अर्थ लागू नहीं होता, बाधित हो जाता है। तब हम उससे संबंधित अर्थ लेते हैं— कवि यहाँ उस स्त्री की बात कर रहा है, जो जीवन संघर्ष में बार-बार मार खाकर या आघात झेलकर रोई नहीं।

व्यंजना— कविता का ऐसा गूढ़ अर्थ जो अभिधा या लक्षणा से न जाना जा सके, व्यंजना से जाना जाता है। इस प्रकार कविता में एक बात के भीतर कोई दूसरी बात छिपी रहती है, उसे हम व्यंजना शक्ति के द्वारा जानते हैं। व्यंजना का प्रयोग हम बोलचाल की भाषा में भी करते हैं। जो बच्चा रोज़ दस बजे स्कूल जाता है, वह दस बजे से थोड़ा पहले यदि अपनी माँ से कहे कि 'दस बजने वाले हैं', तो व्यंजना से इस वाक्य का अर्थ होगा— मेरे स्कूल जाने का समय हो गया है।

व्यंजना के कारण साहित्य में सौंदर्य तथा भावों में गहनता आती है। बात सीधे-सीधे अभिधा में कही जाती है तो वह उतना प्रभाव नहीं डालती, जितना व्यंजना के माध्यम से डालती है। उदाहरण के लिए कबीरदास का यह दोहा देखें—

चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।

यहाँ चलती चक्की को देखकर कबीरदास के दुखी होने की बात कही गई है। उसके द्वारा यह अर्थ व्यंजित होता है कि संसार चक्की के समान है जिसके जन्म और मृत्यु रूपी दो पाटों के बीच आदमी पिसता रहता है।

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना में अंतर— अभिधा किसी शब्द के केवल उसी अर्थ को बतलाती है, जो पहले से निश्चित है और व्यवहार में प्रसिद्ध। यह अर्थ भाषा सीखते समय हमें बताया जाता है। कोश या व्याकरण की सहायता से हम इस अर्थ को जानते हैं। किंतु लक्षणा और व्यंजना से हम शब्दों, वाक्यों या साहित्यिक कृतियों के जो अर्थ निकालते हैं, वे पहले से जाने हुए नहीं होते। लक्षणा में हम शब्दों या वाक्यों से ऐसा अर्थ निकालते हैं, जो उन शब्दों या वाक्यों से सामान्यतः नहीं लिया जाता। पर यहाँ अर्थ सदैव वाच्य अर्थ से संबंधित ही होगा। व्यंजना के द्वारा हम शब्दों या वाक्यों से ऐसे अर्थ भी निकालते हैं, जो उनके वाच्य अर्थों से संबंधित न हों।

अध्याय 4

रस विवेचन

रस से तात्पर्य

सभी साहित्य विचारक यह स्वीकार करते हैं कि साहित्य के अध्ययन से पाठक को सात्विक आनंद प्राप्त होता है। साहित्य या कला से जो आनंद हमें मिलता है, वैसा आनंद संसार में अन्य भौतिक वस्तुओं से नहीं मिल सकता। साहित्य या काव्य को पढ़ने अथवा सुनने या नाटक को देखने से जो आनंद हमें प्राप्त होता है, उसी को भारतीय साहित्यशास्त्र में रस कहा गया है। यह आनंद व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्त होता है। संसार में हम जब प्रेम करते हैं, दुखी होते हैं या क्रोध करते हैं तो इस प्रेम, दुख या क्रोध में हमारा किसी से कोई न कोई व्यक्तिगत संबंध होता है। पर कविता को पढ़कर अथवा सुनकर या नाटक के अभिनय को देखकर यदि हम प्रेम , दुख या क्रोध आदि का अनुभव करते हैं तो उसमें हमारा निजी स्वार्थ, राग या द्वेष नहीं होता। साहित्य या कलाओं का अनुभव हमें व्यक्तिगत संकीर्णता से मुक्त कर देता है । तब हम साहित्य या कला से ऐसा आनंद प्राप्त करते हैं, जो सब के लिए है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आनंद के इस अनुभव को **हृदय की मुक्तावस्था** कहा है। प्राचीन आचार्यों ने इस अनुभव की तुलना योगियों की समाधि के अनुभव या ब्रह्मानंद से भी की है।

रस के अवयव

रस के चार अवयव या अंग हैं– स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव।

स्थायी भाव – संसार में जो भी मनुष्य जन्म लेता है, उसमें कुछ भाव या संस्कार जन्मजात रूप से रहते हैं। उदाहरण के लिए प्रत्येक मनुष्य के चित्त में प्रेम, दुख या करुणा,

क्रोध, आश्चर्य, उत्साह के भाव सदैव रहते हैं। ये ऐसे भाव हैं, जो संस्कार के रूप में जन्म लेने के साथ ही हमारे चित्त में रहते हैं। जब इनके कारण सामने आते हैं और उन कारणों को हम समझने लगते हैं तो संस्कार के रूप में चित्त में दबे हुए ये भाव प्रकट हो जाते हैं। इसी तरह साहित्य या कला में भी ये भाव प्रकट होते हैं। इन्हीं को स्थायी भाव कहा गया है।

स्थायी भाव दस कहे जाते हैं। उनके नाम हैं– रति (स्त्री और पुरुष का प्रेम), हास, शोक (दुख), क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा (घृणा), विस्मय (आश्चर्य), निर्वेद (वैराग्य या शांति) तथा वात्सल्य (अपने से छोटों के लिए प्रेम) ।

विभाव –स्थायी भाव के कारण को विभाव कहा गया है। विभाव दो प्रकार के होते हैं– आलंबन और उद्दीपन।

आलंबन विभाव – जिन व्यक्तियों या पात्रों के आलंबन (सहारे) से स्थायी भाव उत्पन्न होता है, वे आलंबन विभाव कहलाते हैं। आलंबन के भी दो प्रकार हैं– आश्रय और विषय। जिस पात्र या व्यक्ति के चित्त में स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं, वह आश्रय कहलाता है। जिसे लेकर या जिसके प्रति आश्रय के चित्त में ये भाव उत्पन्न होते हैं, वह विषय है।

उद्दीपन विभाव – आश्रय के मन में जागृत स्थायी भाव को जो तत्त्व संवर्धित करते या बढ़ाते हैं, वे उद्दीपन कहे जाते हैं। उद्दीपन विभाव भी दो प्रकार के हैं– विषय की बाहरी चेष्टाएँ और बाह्य वातावरण। उदाहरण के लिए शृंगार रस के प्रसंग में यदि नायक (आश्रय) के मन में नायिका (विषय) के प्रति रति भाव जागृत होता है तो नायिका (विषय) की शारीरिक चेष्टाएँ नायक (आश्रय) के मन में जागृत रति भाव को और अधिक तीव्र करती हैं तथा आसपास का सुंदर वातावरण, चाँदनी रात आदि भी आश्रय के रति भाव को और अधिक तीव्र करने में सहायक होते हैं। अतः विषय की चेष्टाएँ और बाह्य अनुकूल वातावरण दोनों उद्दीपन विभाव हुए।

अनुभाव – अनु का अर्थ है – बाद में । स्थायी भाव के उत्पन्न होने पर उसके बाद जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभाव कहा जाता है। ये अनुभाव उस व्यक्ति में उत्पन्न होते

हैं जो स्थायी भाव का आश्रय है। दूसरे शब्दों में आश्रय की बाह्य चेष्टाओं को अनुभाव कहा जाता है। अनुभाव भी दो प्रकार के होते हैं— कायिक तथा सात्त्विक। शरीर में होने वाले अनुभाव कायिक हैं— जैसे किसी को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाना, चितवन से अपने प्रेमी को ताकना आदि। जो अनुभाव मन में आए भाव के कारण स्वतः प्रकट हो जाते हैं, वे सात्त्विक हैं। जैसे— पसीना आना, रोएँ खड़े हो जाना, कँपकँपी छूटना, मुँह फीका पड़ना आदि।

संचारी भाव — स्थायी भाव के साथ आते-जाते रहने वाले अन्य भावों को संचारी भाव कहा गया है। संचारी भावों की संख्या तैंतीस बताई गई है। इसमे से मुख्य संचारी भाव ये हैं— शंका, निद्रा, मद, आलस्य, दीनता, चिंता, मोह, स्मृति, धैर्य, लज्जा, चपलता, आवेग, हर्ष, गर्व, विषाद, उत्सुकता, उग्रता, मति, त्रास और वितर्क।

रस, स्थायी भाव तथा संचारी भावों के परस्पर संबध को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—

रस	**स्थायी भाव**	**संचारी भाव**
श्रृंगार	रति	स्मृति, चिंता, हर्ष, मोह, असूया आदि
हास्य	हास	हर्ष, निद्रा, आलस्य, चपलता आदि
करुण	शोक	ग्लानि, शंका, चिंता, दीनता, मोह आदि
रौद्र	क्रोध	उग्रता, शंका, स्मृति आदि
वीर	उत्साह	आवेग, हर्ष, गर्व आदि
भयानक	भय	त्रास, ग्लानि, शंका, चिंता आदि
वीभत्स	जुगुप्सा	दीनता, निर्वेद, ग्लानि आदि
अद्भुत	विस्मय	हर्ष, स्मृति, आवेग, शंका आदि
शांत	निर्वेद (वैराग्य)	हर्ष, धृति, स्मृति आदि
वत्सल	वात्सल्य	चिंता, शंका, हर्ष, धृति, स्मृति आदि।

रस के भेद

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शांत और वत्सल– रस के ये दस भेद हैं।

शृंगार रस– स्त्री और पुरुष के बीच होने वाले प्रेम का वर्णन साहित्य में शृंगार रस कहलाता है। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है। शृंगार रस दो प्रकार का होता है– संयोग और वियोग। इसके विभावों में आलंबन के अंतर्गत विषय और आश्रय वे नायक और नायिका माने जाते हैं जिनमें परस्पर प्रेम हो। वसंत ऋतु, चाँदनी रात आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। उत्सुकता, दीनता, चिंता आदि संचारी भाव इसके साथ रहते हैं।

उदाहरण –

(1) मेरा बस चलता तो मैं बन जाता कौमार्य तुम्हारा
ओठों पर निर्माल्य अछूता बन कर मैं छा जाता
अंगों के चंपई रेशमी परदों में सो जाता।

–नरेंद्र शर्मा

(2) उनका यह कुंज कुटीर वही झड़ता उड़ अंशु अबीर जहाँ
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब हैं, सुन चातक की रट 'पीव कहाँ ?'
अब भी सब साज समाज वही, तब भी सब आज अनाथ यहाँ
सखि, जा पहुँचे सुधि-संग कहीं यह अंध सुगंध समीर वहाँ !

–मैथिलीशरण गुप्त

पहले उदाहरण में संयोग शृंगार है। इसमें प्रेमी आश्रय है, प्रेमिका विषय (आलंबन) । प्रेमिका की सुंदरता उद्दीपन है। प्रेमिका के ओठों पर निर्माल्य बन कर छाने, उसके अंगों के परदों में सोने आदि की इच्छा अनुभाव है। हर्ष, आवेग, मोह आदि संचारी भाव हैं। इनसे यहाँ रति (प्रेम) स्थायी भाव प्रकट होता है। इस रति की अभिव्यक्ति से पाठक को सयोग शृंगार का अनुभव होता है। दूसरा उदाहरण मैथिलीशरण गुप्त के यशोधरा काव्य में विरहिणी

यशोधरा का कथन है। इसमें वियोग शृंगार है। यशोधरा आश्रय (आलंबन) है। सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) विषय (आलंबन) हैं। कुंज, कुटीर, उनसे झड़ता अंशु अबीर, कोयल, भौंरा और पपीहों की ध्वनियाँ, सुगंध समीर आदि उद्दीपन हैं। सखी को अपनी व्यथा बताना अनुभाव है। इन विभावों और अनुभावों से स्मृति, मोह, विषाद आदि संचारी भाव प्रकट होते हैं तथा इन सबके संयोग से वियोग शृगार का अनुभव होता है।

हास्य रस — अनुचित आचरण, विकृत चेष्टाओं के चित्रण से हास्य रस होता है। हास्य रस का स्थायी भाव हास (हँसी) है। हँसी या उपहास का पात्र इसमें आलंबन विभाव तथा हँसा देने वाली चेष्टाएँ उसमें उद्दीपन विभाव बनती हैं।

उदाहरण —

इस दौड़-धूप में क्या रखा, आराम करो, आराम करो।
आराम ज़िंदगी की कुंजी, इससे न तपेदिक होती है,
आराम सुधा की एक बूँद, तन का दुबलापन खोती है।

आराम शब्द में राम छिपा, जो भव बंधन को खोता है,
आराम शब्द का ज्ञाता तो बिरला ही योगी होता है।
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ, मेरे अनुभव से काम करो।

—गोपालप्रसाद व्यास

कविता एक आलसी व्यक्ति की उक्ति है। आलसी व्यक्ति यहाँ आलंबन है। उसके हास्यपूर्ण कथन उद्दीपन हैं। हर्ष, चपलता, आलस्य आदि संचारी भाव हैं। इनसे यहाँ हास्य रस की सृष्टि होती है।

करुण रस — अत्यंत दुखद घटना या प्रसंग के निरूपण से करुण रस की उत्पत्ति होती है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है। प्रिय व्यक्ति या प्रिय वस्तु से सदा के लिए वियोग होने पर करुण रस होता है। जिससे वियोग हो, वह इसमें आलंबन और उससे संबंधित वस्तुओं

का दर्शन उद्दीपन होता है। मूर्च्छित होकर गिर पड़ना, रोना, आहें भरना आदि अनुभाव होते हैं और ग्लानि, चिंता आदि संचारी भाव ।

उदाहरण–

अभी तो मुकुट बँधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी न चुंबनशून्य कपोल
हाय चुक गया संसार –
बना सिंदूर अंगार !

कवि सुमित्रानंदन पंत की इन पंक्तियों में सुखमय संसार के अचानक नष्ट हो जाने से जन्मी गहरी निराशा व्यक्त हुई है। किसी नववधू का प्रियतम विवाह के बाद पहले ही दिन दिवंगत हो गया है। यह नववधू यहाँ आश्रय है। दिवंगत पति विषय है। नायिका का दुख में मौन रह जाना अनुभाव है। विषाद, चिंता, लज्जा आदि संचारी भाव हैं। इनके संयोग से यहाँ करुण रस व्यक्त हुआ है।

रौद्र रस – रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। अपना शत्रु, दुष्ट व्यक्ति, समाजद्रोही, खलनायक आदि इसमे आलंबन विभाव होते हैं तथा उनके कार्य या चेष्टाएँ उद्दीपन। आँखें लाल होना, दाँत पीसना, ओठ काटना, अस्त्र-शस्त्र उठाना आदि इस रस में अनुभाव होते हैं। उग्रता, मद, गर्व आदि संचारी भाव।

उदाहरण–

जो तुम्हारे अनुसासनि पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।।
काचो घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी।।

–तुलसीदास

सीता स्वयंवर के प्रसंग में जनक के चुनौती भरे वचन सुनकर यहाँ लक्ष्मण क्रोध प्रकट कर रहे हैं। यहाँ लक्ष्मण क्रोध नामक स्थायी भाव के आश्रय हैं, जनक विषय तथा शिव का धनुष उद्दीपन। लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण वचन अनुभाव हैं। इनसे असूया, आवेग, चपलता आदि संचारी भाव प्रकट होते हैं। इन विभावों, अनुभावों और संचारी भावों से व्यक्त हुआ क्रोध रौद्र रस बनता है। इसी प्रकार यह उदाहरण भी द्रष्टव्य है–

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे,
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।
"संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े",
करते हुए यह घोषणा वे हो गए उठ कर खड़े।

मैथिलीशरण गुप्त के ***जयद्रथ-वध*** काव्य में यहाँ अर्जुन के क्रोध का निरूपण होने से रौद्र रस व्यक्त हुआ है। अर्जुन आश्रय है, जयद्रथ विषय। श्रीकृष्ण के वचन उद्दीपन हैं। अर्जुन का हथेली मलना तथा घोषणा करना अनुभाव हैं।

वीर रस– युद्ध, धर्म, दान या करुणा के प्रसंगों में किसी वीर या महापुरुष नायक की चेष्टाओं के चित्रण से वीर रस होता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है। शत्रु, याचक, दयनीय व्यक्ति आदि इसके आलंबन विभाव होते हैं। शत्रु की चेष्टाएँ, याचक के वचन आदि उद्दीपन। बाहों का फड़कना, मुँह का लाल होना आदि अनुभाव इसके साथ रहते हैं तथा गर्व, हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव।

उदाहरण–

भीषम भयानक पुकार्‌यो रनभूमि आनि,
    छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जाइगी।
कहै रतनाकर रुधिर सौं रुँधेगी धरा,
    लोथनि पै लोथनि की भिति उठि जाइगी।
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु-पूतनि की,
    भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी।

कैतो प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी, कै
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के इस काव्यांश में भीष्म के दृढ़ निश्चय का चित्रण किया गया है। भीष्म आश्रय हैं, श्रीकृष्ण विषय हैं, भीष्म का घोषणा करना अनुभाव है। धृति, मति, गर्व आदि संचारी भाव यहाँ व्यक्त हुए हैं। भीष्म का उत्साह स्थायी भाव है।

भयानक रस – डरावने दृश्यों या भयजनक प्रसंगों के चित्रण से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। भयानक रस का स्थायी भाव भय है। डरावने व्यक्ति या जानवर आदि इसमें आलंबन विभाव होते हैं तथा भयानक दृश्य या भयंकर कर्म उद्दीपन। काँपना, प्रसीना आना आदि अनुभाव तथा दीनता, त्रास, वितर्क आदि संचारी भाव इसके साथ रहते हैं।

उदाहरण–

एक ओर अजगरहिं लखि एक ओर मृगराय।
विकल बटोही बीच ही पर्‌यो मूरछा खाय।।

यहाँ विकल बटोही (पथिक) आश्रय है। अजगर तथा सिंह विषय हैं। अजगर और सिंह की चेष्टाएँ उद्दीपन है और बटोही का मूर्च्छित होना अनुभाव है। त्रास, शंका, दीनता, आवेग आदि संचारी भाव हैं।

वीभत्स रस–घृणा उत्पन्न करने वाले अमांगलिक, अश्लील या गंदे दृश्यों अथवा वस्तुओं के चित्रण से वीभत्स रस उत्पन्न होता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा (घृणा) है। घृणित वस्तु इसमें आलंबन तथा दुर्गंध आदि उद्दीपन होते हैं। नाक बंद करना, झिझकना, दूर हटना आदि अनुभाव तथा आवेग, ग्लानि आदि संचारी भाव होते हैं।

उदाहरण–

सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनंद उर धारत ।।

गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि के मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि कै खात बिदारत ।।

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

यहाँ श्मशान के घृणित दृश्य का चित्रण होने से वीभत्स रस है। श्मशान के दृश्य को देखने वाले राजा हरिश्चंद्र आश्रय है। श्मशान विषय है। श्मशान में कौवे, सियार, गिद्ध आदि पशु-पक्षियों की घृणित चेष्टाएँ उद्दीपन हैं। इनके द्वारा हम उबकाई आना, वमन होना आदि अनुभावों की कल्पना कर सकते हैं । आवेग, उग्रता आदि संचारी भाव यहाँ प्रकट हुए हैं और इस प्रकार यहाँ वीभत्स रस की व्यंजना हुई है। जुगुप्सा स्थायी भाव है।

अद्भुत रस —चकित कर देने वाले दृश्यों या प्रसंगों के चित्रण से अद्भुत रस होता है। इसका स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य है। चकित कर देने वाले व्यक्ति या दृश्य इसमें आलंबन और उनकी चेष्टाएँ अथवा वर्णन उद्दीपन होते हैं। आँखें फैलना, चीत्कार करना आदि अनुभाव और उत्सुकता, स्मृति, हर्ष आदि संचारी भाव इसके साथ रहते हैं।

उदाहरण—

हरि ने भीषण हुंकार किया
अपना स्वरूप विस्तार किया।
डगमग-डगमग दिग्गज डोले
भगवान कुपित हो कर बोले
जंजीर बढ़ा कर साध मुझे
हाँ हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे
यह देख गगन मुझमें लय है
यह देख पवन मुझमें लय है
मुझमें विलीन झंकार सकल
मुझमें लय है संसार सकल

दुर्योधन शांतिदूत बनकर आए श्रीकृष्ण को बाँधना चाहता है, तब श्रीकृष्ण अपना विराट रूप प्रकट कर देते हैं । श्रीकृष्ण के विराट रूप का विस्मयजनक वर्णन होने से यहाँ अद्भुत रस है। दुर्योधन की सभा के सदस्य आश्रय हैं और श्रीकृष्ण का विराट रूप विषय। कृष्ण का भीषण हुँकार करना, दिग्गजों का डोलना तथा उनके चुनौती भरे कथन उद्दीपन हैं। देखने वालों के नेत्रों का आश्चर्य से फैलना, उनके देह का रोमांचित होना आदि अनुभाव यहाँ कल्पित किए जा सकते हैं। उत्सुकता, आवेग, हर्ष, अमर्ष आदि संचारी भाव हैं।

शांत रस — मन में संयम, शांति या वैराग्य को जाग्रत करने वाले प्रसंगों के चित्रण में शांत रस होता है। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद या वैराग्य है। परमात्म-चिंतन या तत्त्वज्ञान उसका आलंबन और शांत स्थान, आश्रम तीर्थ आदि का दर्शन उद्दीपन होता है। रोमांच होना, मुसकान आदि अनुभाव तथा हर्ष, स्मृति, धैर्य आदि संचारी भाव होते हैं।

उदाहरण—

ममतामूर्ति अहिंसाप्रतिमा
स्थविर शांत थे, शांत पवन था
चंचल कहीं नहीं था कुछ भी
शांत शब्द था, शांत गगन था
भिक्षु मंडली शांत, शांत राजा का दल था
शांत त्वरित गति बहने वाला निर्झर जल था
क्लांतिहीन वाणी अशोक की
मैं विमूढ़ हूँ, मुग्ध प्राण हूँ, दिशा चाहिए।

ये पंक्तियाँ भवानीप्रसाद मिश्र के ***कालजयी*** नामक काव्य की हैं। यहाँ सम्राट् अशोक के मन में युद्ध में हुई हिंसा को देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया है। वे शांति प्राप्त करने के लिए स्थविर (बौद्ध भिक्षु) के पास पहुँचते हैं। यह पूरा प्रसंग चित्त में संयम, शांति या वैराग्य के भाव जाग्रत करता है, इसलिए यहाँ शांत रस है। सम्राट् अशोक आश्रय हैं, बौद्ध भिक्षु

विषय हैं। *आश्रम का शांत वातावरण और बौद्ध भिक्षु का प्रभाव उद्दीपन हैं।* अशोक की शांति के लिए पुकार अनुभाव है। स्मृति, धृति, मति आदि संचारी भाव हैं, इनसे निर्वेद या वैराग्य नामक स्थायी भाव शांत रस में परिणत हुआ है।

वत्सल रस — अपने से छोटे के लिए स्नेह का चित्रण होने पर वत्सल रस होता है। *इस रस का स्थायी भाव वात्सल्य है।* पुत्र, शिष्य, शिशु आदि स्नेहपात्र इसके आलंबन विभाव तथा उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। बच्चे को गोद में उठाना, दुलारना आदि अनुभाव और हर्ष, शंका, आवेग, स्मृति आदि संचारी भाव होते हैं।

उदाहरण—

जगदंबा ने बाहर आ कर
कहा— नहा धो ले बेटा
खा पी लो थक कर आए घर
जाने के दिन में लौटे हो
दुबला तन ले मुरझाया मुख
खटते औरों के हित नित
कब समझोगे अपना सुख-दुख

सुमित्रानंदन पंत के ***लोकायतन*** महाकाव्य की इन पंक्तियों में माँ का एक बेटे के प्रति वात्सल्य चित्रित है। जगदंबा आश्रय है, बेटा विषय। जगदंबा का स्नेहपूर्ण कथन अनुभाव है। हर्ष, चिंता, आवेग आदि संचारी भाव हैं।

रसों की परस्पर अनुकूलता और प्रतिकूलता

किसी भी कृति में एक साथ कई रस रह सकते हैं। इनमें से एक प्रधान रस होता है, दूसरे गौण रस होते हैं। परंतु जो रस परस्पर अनुकूल हों, उन्हीं को एक साथ रचना में लाना चाहिए। प्रतिकूल रसों को एक साथ ले आने से रचना में रसदोष उत्पन्न होता है। शृंगार और वीर परस्पर अनुकूल हैं। इसी प्रकार शृंगार और हास्य भी परस्पर अनुकूल हैं। शृंगार और

वत्सल रस भी परस्पर अनुकूल हैं। वत्सल रस और हास्य रस भी साथ-साथ रह सकते हैं। वीर रस के साथ अद्भुत और रौद्र रस अनुकूल रहते हैं तो अद्भुत और रौद्र रसों के साथ वीर। शृंगार और अद्भुत भी परस्पर अनुकूल हैं। परंतु शृंगार के साथ करुण, वीभत्स, रौद्र, भयानक-- इन रसों का विरोध है, इन रसों के साथ शृंगार रस या शृंगार रस के साथ एक ही रचना मे एक प्रसग में ये रस साथ-साथ नहीं होने चाहिए। रौद्र रस का हास्य और भयानक रसों से विरोध है। ये तीनों रस भी एक साथ नहीं होने चाहिए। रसों की अनुकूलता और प्रतिकूलता को इस चार्ट के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है--

रस	अनुकूल	प्रतिकूल
शृंगार	वीर, हास्य, अद्भुत तथा वत्सल	वीभत्स, शांत, रौद्र और भयानक
वीर	अद्भुत तथा रौद्र	शांत, करुण, भयानक
हास्य	वत्सल	वीभत्स, शात, करुण, रौद्र, भयानक

रसों का पुरुषार्थ से संबंध

भारतीय परंपरा में मानव जीवन के चार पुरुषार्थ माने गए हैं-- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने रस का अनिवार्य संबंध पुरुषार्थ से माना है। अर्थात् साहित्य में रस की अभिव्यक्ति होती है तो उससे किसी न किसी पुरुषार्थ की प्रेरणा सहृदय पाठक या नाटक के दर्शक को अवश्य मिलनी चाहिए। शृंगार और हास्य से काम पुरुषार्थ की, वीर रस और रौद्र रस से धर्म पुरुषार्थ की , भयानक और वीभत्स रसों से अर्थ पुरुषार्थ की तथा शांत रस से मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।

अध्याय 5

गुण-दोष विवेचन

काव्य के गुण

जिस प्रकार मनुष्य या किसी भी पदार्थ में गुण तथा दोष होते हैं, उसी प्रकार काव्य में भी गुण तथा दोष संभव हैं। शिष्टता, उदारता और सरलता जैसे गुणों से मनुष्य का व्यक्तित्व सुंदर, भव्य और आकर्षक बनता है, उसी प्रकार काव्य के गुणों से काव्य उदात्त, सुंदर और आकर्षक बनता है। मनुष्य के गुण उसके व्यक्तित्व या अंत:करण में विद्‌यमान रहते हैं, उन्हें उस व्यक्तित्व या अंतःकरण से अलग करके हम नहीं देख सकते। इसी तरह काव्य के गुण भी उसके आंतरिक अंग होते हैं, जो काव्य के सौंदर्य को बढ़ाते हैं। काव्य की आत्मा रस मानी गई है और गुण रस के धर्म माने जाते हैं, इसलिए रसों का गुण से अनिवार्य संबंध है।

गुणों के प्रकार– गुण तीन हैं – माधुर्य, ओज और प्रसाद।

माधुर्य गुण– माधुर्य का अर्थ है मधुरता या मिठास। काव्य में माधुर्य वर्णों, शब्दों की अथवा अर्थ की मधुरता से आता है। जब कोमल वर्णों या अक्षरों का प्रयोग हो, शब्द भी सुरुचिपूर्ण तथा मधुर हों और उनसे प्रकट किया गया अर्थ भी भावपूर्ण हो तो कविता में माधुर्य गुण आता है। शृंगार, करुण और शांत रसों में माधुर्य गुण माना जाता है। माधुर्य गुण के कारण काव्य पढ़ने या सुनने में हमें अच्छा लगता है। उसका अर्थ हमारे मन को द्रवित कर देता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि **काव्य का वह गुण जो चित्त को द्रवित और आनंदविभोर कर दे, माधुर्य है।**

उदाहरण—

निरख सखी ये खंजन आए
फेरे उन मेरे रंजन ने इधर नयन मन भाए।
—मैथिलीशरण गुप्त

यह उक्ति वियोग शृंगार के प्रसंग की है। यहाँ वियोगिनी ऊर्मिला कह रही है कि खंजन पक्षियों का आना ऐसा लग रहा है जैसे मेरे प्रियतम लक्ष्मण ने मेरी ओर निहारा हो। यह अर्थ भी मधुर है, शब्द भी सुरुचिपूर्ण और सुंदर हैं तथा उनके अनुरूप यहाँ कोमल वर्णों का प्रयोग किया गया है।

ओज गुण — ओज गुण के कारण काव्य में ओजस्विता आती है। ऐसी कविता जिसको पढ़कर चित्त स्फूर्त हो जाए या फड़क उठे, ओज गुण से युक्त होती है। ओज गुण में ट, ठ, प, फ आदि कठोर वर्णों या कठोर अक्षरों का प्रयोग होता है। बड़े-बड़े शब्द या समासों का प्रयोग भी कवि ओज गुण लाने के लिए करते हैं। ओज गुण वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में होता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि **काव्य का वह गुण जो चित्त में तेज और स्फूर्ति का संचार करता है, ओज गुण है।**

उदाहरण—

साजि चतुरंग सेन अंग में उमंग धारि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषण भनत नाद-बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।

भूषण के इस छंद में युद्ध के लिए शिवाजी के प्रस्थान का वर्णन है। इसको पढ़ते हुए हम उत्साह से फड़क उठते हैं, अतएव यहाँ ओज गुण है। इसी प्रकार प्रसाद की इन पंक्तियों में भी ओज गुण है—

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं-प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर-पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

प्रसाद गुण— प्रसाद का अर्थ है निर्मलता या स्वच्छता। कविता का अर्थ इतना निर्मल हो कि वह पढ़ते ही चित्त में उतर जाए तो ऐसी कविता में प्रसाद गुण होता है। प्रसाद गुण ऐसा गुण है जो सभी रसों में, सभी प्रसगों में तथा प्राय सभी प्रकार की रचनाओं में आवश्यक माना गया है। प्रसाद गुण का लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है— **प्रसाद गुण काव्य का वह गुण है जो काव्य को पढ़ते या सुनते ही उसके अर्थ को हृदयंगम बना देता है।**

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता ***फूल की चाह***, हरिवंशराय बच्चन की ***मधुशाला***, मैथिलीशरण गुप्त की ***पंचवटी*** आदि कविताओं से इसके उदाहरण दिए जा सकते हैं।

काव्य के दोष

जिस तरह मनुष्य के व्यक्तित्व का उसके गुणों के कारण उत्कर्ष होता है, उसी प्रकार उसके दोषों के कारण व्यक्तित्व का अपकर्ष होता है। काव्य में भी इसी प्रकार दोष हो सकते हैं। दोषों के कारण काव्य के रसास्वाद में बाधा पैदा होती है, उसका सौंदर्य कम हो जाता है तथा अर्थ को समझने में भी कठिनाई हो सकती है।

दोष का लक्षण इस प्रकार है — **जिसके कारण काव्य के रसास्वाद में व्यवधान हो अथवा अर्थबोध में बाधा हो वह दोष है।**

दोष के प्रकार

मुख्य रूप से दोष तीन प्रकार के होते हैं– शब्द दोष, अर्थ दोष और रस दोष। दोषों में से कुछ नित्य दोष होते हैं, कुछ अनित्य। नित्य दोष सदैव दोष रहते हैं। अनित्य दोष काव्य में विशेष प्रसंग में या रस की दृष्टि से कहीं-कहीं दोष नहीं रहते। कहीं-कहीं वे गुण हो जाते हैं। मुख्य दोष इस प्रकार हैं–

श्रुतिकटुत्व – श्रुति का अर्थ है सुनना और कटुत्व का अर्थ है कड़वापन। जिस काव्य में शब्द सुनने पर कठोर और बुरे लगें उसमें श्रुतिकटुत्व दोष होता है। शृंगार, करुण, शांत जैसे रसों के प्रसंग में कठोर वर्णों या शब्दो का प्रयोग करने पर यह दोष होता है।

उदाहरण–

कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता।
पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता ? ।।

यहाँ धृष्टता, विषयोत्कृष्टता, विचारोत्कृष्टता आदि शब्दों में कठोर वर्ण होने से श्रुतिकटुत्व दोष आ गया है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रुतिकटुत्व सर्वत्र दोष नहीं होता। वीर रस, वीभत्स रस या रौद्र रस के काव्य में श्रुतिकटु उलटा गुण हो सकता है।

च्युतसंस्कृति– व्याकरण के अनुसार शब्द का गलत प्रयोग करने पर च्युतसंस्कृति दोष माना जाता है।

उदाहरण–

मृदुल मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा
तब पिक करती तू शब्द प्रारंभ तेरा।

यहाँ पिक करती तू शब्द प्रारभ अपना– यह कहना चाहिए न कि तेरा।

क्लिष्टत्व— क्लिष्टत्व का अर्थ है कठिनाई। अर्थ को दुरूह बनाने वाले शाब्दिक चमत्कारों के प्रयोग से यह दोष काव्य में आ जाता है।

उदाहरण—

तरु-रिपु-रिपु-धर देख के विरहिन तिय अकुलाय ।

यहाँ मेघ के लिए 'तरु-रिपु-रिपु-धर' शब्दों का प्रयोग किया गया है जिसका तात्पर्य है वृक्ष का शत्रु अग्नि, अग्नि का शत्रु जल और उस जल को धारण करने वाला बादल। ऐसे प्रयोगों के कारण अर्थबोध में कठिनाई होती है।

संदिग्ध— जब काव्य में संदेह हो कि कवि किस अर्थ को बताना चाहता है, तो संदिग्ध दोष होता है।

उदाहरण—

मार से बचाओ नाथ आई हूँ शरण में।

इन पंक्तियों में भक्त नारी ईश्वर से प्रार्थना कर रही है। यहाँ यह संदेह होता है कि वह मार (कामदेव) से रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही है या मार (पिटाई) से बचाने के लिए। अतः संदिग्ध दोष है। यदि मार के स्थान पर काम शब्द रखा जाता तो यहाँ यह दोष न होता।

न्यूनपदत्व — कविता में जब अर्थ की स्पष्टता के लिए कोई शब्द जोड़ना आवश्यक लगे, जिसे कवि ने छोड़ दिया हो तो न्यूनपदत्व दोष होता है।

उदाहरण—

यदि मुझे बाँधना चाहे मन,
पहले लो बाँध अनंत गगन।

यहाँ पर पहली पंक्ति मे मन के पहले तुम्हारा शब्द जोड़ने पर ही अर्थ स्पष्ट हो पाता है।

अधिकपदत्व— यह न्यूनपद के विपरीत है। अनावश्यक शब्दों के प्रयोग से अधिकपदत्व दोष होता है।

उदाहरण—

तुम प्राप्त करो उनको न अहो,
फिर है यह किसका दोष कहो।

यहाँ पहली पंक्ति में अहो शब्द केवल दूसरी पंक्ति में कहो की तुक मिलाने के लिए जोड़ा गया है, अर्थ की दृष्टि से वह अनावश्यक है। अत. अधिकपदत्व दोष है।

पुनरुक्त — (पुनः= फिर से, उक्त = कहा गया) कही हुई बात को बिना प्रयोजन के दोहराने से पुनरुक्त दोष होता है।

उदाहरण —

धन्य हैं कलंकहीन जीना एक क्षण का,
युग-युग जीना सकलंक धिक्कार है।

यहाँ प्रथम पक्ति के अर्थ को ही दूसरी पंक्ति में दोहराया गया है, अत' पुनरुक्त दोष है।

अश्लीलत्व — लज्जाजनक, घृणास्पद या अमांगलिक कथन होने पर अश्लीलत्व दोष होता है।

उदाहरण—

लिगार्चन के हेतु जा रहा कौन वहाँ ?

इस पक्ति में लिगार्चन का अर्थ भगवान शिव की पूजा है, पर इस शब्द से अन्य लज्जाजनक अर्थ का बोध होने से यहाँ अश्लीलत्व दोष है।

स्वशब्दवाच्य — स्वशब्दवाच्य का अर्थ है नाम से कहना। यह रस दोष है। जब रस, स्थायी भाव या सचारी भाव का नाम ले लिया जाए तो यह दोष होता है।

उदाहरण—

रससिंगार मजनु किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजन रंजनु हूँ बिना खजनु गंजनु नैन ।

यहाँ शृंगार रस का नाम होने से स्वशब्दवाच्य दोष है।

अध्याय 6

अलंकार विवेचन

अलंकार से तात्पर्य

अलंकार शब्द अलम् शब्द के साथ कृ (करना) धातु से बना है। अलम् के तीन अर्थ होते हैं– सजाना, रोकना तथा पर्याप्त होने का भाव। कविता या साहित्य की दृष्टि से भी अलंकार शब्द ये तीनों भाव प्रकट करता है। जिससे काव्य में सौंदर्य उत्पन्न होता हो वह अलंकार है। यह अलंकार का पहला अर्थ है। वह सौंदर्य इस प्रकार का हो कि कहना पड़े कि बस, बस ! इससे अधिक क्या कहा जा सकता है– तो यह अलंकार का दूसरा अर्थ है। इसके साथ ही अलंकार से साहित्य में संपूर्णता आती है। यह अलंकार का तीसरा अर्थ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार कथन की रोचक, सुंदर और प्रभावपूर्ण प्रणाली अलंकार है। गुण और अलंकार में यह अंतर है कि गुण सीधे रस का उत्कर्ष करते हैं, अलंकार सीधे रस का उत्कर्ष नहीं करते।

अलंकार के मुख्य भेद

पहले अध्याय में हमने देखा कि काव्य या साहित्य में दो तत्त्व होते है– शब्द और अर्थ। अलंकार भी इस आधार पर दो प्रकार के होते हैं– शब्दालंकार और अर्थालकार। शब्द के सौंदर्य की वृद्धि करने वाले और उसे संपूर्ण बनाने वाले तत्त्व शब्दालकार हैं और अर्थ के सौंदर्य का उत्कर्ष करने वाले तथा अर्थ को परिपूर्णता देने वाले तत्त्व अर्थालंकार हैं।

शब्दालंकार– शब्दालंकार के मुख्य भेद चार हैं– अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा पुनरुक्तवदाभास।

अनुप्रास— समान व्यंजनों की आवृत्ति (दोहराने) से अनुप्रास अलंकार होता है। इस आवृत्ति या दोहराने से काव्य में लालित्य और लय उत्पन्न होती है। इस आवृत्ति का अलग से अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता । इसमें एक ही वर्ण को कई बार अथवा कई वर्णों को एक-एक बार दोहराया जाता है।

उदाहरण—

पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से
मानो झीम रहे हैं तरु भी
मंद पवन के झोंकों से।

मैथिलीशरण गुप्त के ***पंचवटी*** काव्य की इन पंक्तियों में पहली पंक्ति में 'प' और 'र' की एक-एक बार आवृत्ति हुई है। दूसरी पंक्ति में 'त' की एक बार आवृत्ति है। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति में 'र' की एक बार आवृत्ति है । इस प्रकार यह पद्यांश अनेक वर्णों की एक-एक बार आवृत्ति का उदाहरण है।

तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।

कवि भारतेंदु की इस पंक्ति में 'त' वर्ण को चार बार दोहराया गया है। अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है। यह एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति का उदाहरण है। इसी प्रकार पंत की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य है —

मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर,लघु तरणि हंसिनी-सी सुंदर,
तिर रही खोल पालों के पर।

पहली पंक्ति में 'न्द' और 'न्थ' की आवृत्ति हुई है। दूसरी पंक्ति में 'स' और 'र' की दो-दो बार आवृत्ति हुई है तथा तीसरी पंक्ति में 'र' की तीन बार आवृत्ति हुई है। इसी पंक्ति में 'ल' की एक बार आवृत्ति हुई है। इन आवृत्तियों के कारण कविता में लालित्य और लय आ गए हैं इसलिए यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

यमक— एक ही शब्द को दो या दो से अधिक बार दोहराया जाए और इस आवृत्ति के अर्थ अलग-अलग हों तो यमक अलंकार होता है। यमक के प्रयोग से कविता में चमत्कार और सुंदरता आ जाती है।

उदाहरण—

कनक कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय जग, या पाए बौराय।।

इस दोहे में 'कनक' शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है। पहले कनक का अर्थ है धतूरा और दूसरे कनक का अर्थ है स्वर्ण या सोना । धतूरा खाने से मद होता है जबकि सोने को पाने मात्र से । कवि सोने और धतूरे की तुलना कर रहा है, दोनों के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होने से यहाँ यमक अलंकार है।

तरणि के ही सग तरल तरग में
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

यहाँ 'तरणि' शब्द में यमक है। पहली पंक्ति में जो 'तरणि' शब्द आया है उसका अर्थ है सूर्य। दूसरी पंक्ति में जो 'तरणि' शब्द है, उसका अर्थ नाव है। कवि कहना चाहता है कि उधर सूर्य डूब रहा था और इधर हमारी नाव डूब रही थी। सूर्य और नाव दोनों डूब रहे हैं, इसलिए दोनों के लिए उसने 'तरणि' इस एक शब्द का प्रयोग करके कविता में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

श्लेष— श्लेष का अर्थ होता है चिपका हुआ । अर्थात् एक शब्द के दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हों तो श्लेष अलंकार होता है।

उदाहरण —

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गभीर ।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ।।

बिहारी के इस दोहे में वृषभानुजा (वृषभानु की पुत्री राधा) और हलधर या बलराम के बीर अर्थात् भाई (कृष्ण) के लिए शुभकामना प्रकट की गई है। पर 'वृषभानुजा' तथा 'हलधर' इन दोनों शब्दों का अन्य अर्थ भी निकलता है जिसमें कवि का विनोद झलकता है। वृषभानुजा अर्थात् वृषभ (बैल) की अनुजा अर्थात् गाय और हलधर का अर्थ भी बैल ही है। इसी प्रकार--

घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहो मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

कवि घनानंद की इन पंक्तियों में 'मन' और 'छटॉक' -- इन दोनों शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार है। मन का एक अर्थ है -- चित्त और दूसरा अर्थ है -- एक तौल (चालीस सेर) । इसी प्रकार छटाँक के भी दो अर्थ हैं-- छटा का अंक (शोभा की एक झलक) तथा तौल का छोटा परिमाण (आज के तौल में दस ग्राम से कुछ अधिक, सोलह छटाँके का एक सेर होता है)। प्रेमी अपने प्रीतिपात्र से शिकायत कर रहा है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति मन भर सामान लेकर उसके बदले में एक छटाँक भर भी उसका हिस्सा न लौटाए , उसी प्रकार तुम भी मन ले कर एक छटाँक अपनी छटा या झलक तक नहीं दिखलाते। श्लेष अलंकार के कारण यहाँ अर्थ और भाव में चमत्कार आ गया है।

पुनरुक्तवदाभास-- पुनरुक्तवदाभास का अर्थ है पुनरुक्त जैसा लगना। पुनरुक्त का अर्थ है-- फिर कहा गया। किसी उक्ति या कथन को दो या दो से अधिक बार कहा जाए तो पुनरुक्त होता है। पुनरुक्त दोष माना जाता है क्योंकि इससे कविता में आकर्षण नहीं रह जाता । परंतु जब कवि किसी बात को इस तरह से कहे कि पुनरुक्ति जैसी लगे, पर वास्तव में पुनरुक्ति न हो तो पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है ।

उदाहरण --

होते विकंपित भी नहीं क्या अचल भूधर भी यहाँ

इस पंक्ति मे अचल का अर्थ भी पहाड़ किया जा सकता है और भूधर का अर्थ भी पहाड़ है। अतः पहाड़ के लिए दो शब्दों का प्रयोग होने से पुनरुक्ति प्रतीत होती है, पर अचल

का अर्थ यहाँ अडिग लेना चाहिए। ऐसी स्थिति में वास्तव में पुनरुक्ति नहीं है, पुनरुक्ति का आभास होता है इसलिए पुनरुक्तवदाभास अलंकार है।

अर्थालंकार : अर्थालंकार कई प्रकार के होते हैं। कुछ अर्थालंकार सादृश्यमूलक होते हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों में दो वस्तुओं में समानता बताई जाती है। कुछ अलंकार विरोधमूलक होते हैं। इनमें विरोध दिखाकर कविता में चमत्कार उत्पन्न किया जाता है।

सादृश्यमूलक अलंकारों में चार तत्त्व रहते हैं —

उपमेय— जिसकी समानता बतानी हो वह उपमेय है। इसको प्रस्तुत भी कहा जाता है।

उपमान — जिससे समानता बताई जाए वह उपमान है। इसको अप्रस्तुत भी कहा जाता है।

साधारण धर्म — उपमेय और उपमान में जो गुण समान हों, वे साधारण धर्म हैं।

वाचक शब्द — जिन शब्दों के द्वारा समानता दिखाई जाए वे वाचक शब्द हैं।

उपमा— उपमा सादृश्यमूलक अलंकारों में सबसे पहला है। जहाँ भिन्नता रहते हुए भी उपमेय की उपमान के साथ समानता का कथन हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

उदाहरण—

मँहगाई बढ़ रही निरंतर द्रुपदसुता के चीर सी।
बेकारी बढ़ रही चीरती अंतर्मन को तीर सी।

सोहनलाल द्विवेदी की इन पंक्तियों में दो उपमाएँ हैं। पहली उपमा में मँहगाई उपमेय है और दूसरी उपमा में बेकारी उपमेय है। मँहगाई के लिए द्रुपदसुता (द्रौपदी) के चीर (वस्त्र) तथा बेकारी के लिए तीर ये उपमान हैं। मँहगाई और द्रौपदी का चीर ये दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार बेकारी और तीर ये भी अलग-अलग वस्तुएँ हैं। अतः दोनों उपमाओं में दो अलग-अलग वस्तुओं में समानता का कथन हुआ है। पहली उपमा में बढ़ना साधारण धर्म है, दूसरी में चीरना। 'सी' यह वाचक शब्द दोनों उपमाओं में आया है।

रूपक— जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप करते हुए दोनों में अभेद बताया जाए वहाँ रूपक अलंकार होता है। उपमा की तरह रूपक में उपमेय तथा उपमान दोनों अलग-अलग कहे जाते हैं, पर कवि दोनों को अलग-अलग कहकर भी अभेद या एकता बताता है।

उदाहरण—

चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर न होगा
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।

जयशंकर प्रसाद के ***आँसू*** काव्य की इन पंक्तियों में विरह का वर्णन करते हुए विरही के जीवन (उपमेय) पर समुद्र (उपमान) का आरोप किया गया है। इस जीवन रूपी समुद्र में चेतना (उपमेय) लहर (उपमान) की तरह उठती-गिरती रहती है। पहली पंक्ति में चेतना पर लहर का आरोप भी किया गया है। इस तरह यहाँ एक प्रधान रूपक (जीवन-समुद्र) है और दूसरा रूपक (चेतना-लहर) उसका अंग बन कर आया है।

उत्प्रेक्षा— उत्प्रेक्षा का *अर्थ* कल्पना या संभावना है। उपमेय में उपमान की कल्पना या संभावना प्रकट की जाए तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। मानो, मानहुँ, जानहुँ, गोया, ऐसा लगता है, सचमुच ही, लगभग इत्यादि शब्दों के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार में कवि कल्पना या संभावना को प्रकट करते हैं। अतः ये शब्द उत्प्रेक्षा की पहचान कहे जा सकते हैं।

उदाहरण—

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट-पट झीन।
मानहुँ सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन।।

बिहारी के इस दोहे में घूँघट के झीने पट में चमचमाते चंचल नयनों के लिए कहा गया है कि मानो वे गंगा के निर्मल जल में उछलती दो मछलियाँ हैं। इस संभावना या कल्पना के कारण यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। नायिका के नयन यहाँ उपमेय और मछली उपमान है।

संदेह — जहाँ उपमेय में उपमान का संदेह प्रकट किया जाता है वहाँ संदेह अलंकार होता है।

उदाहरण–

आई है वीरता तपोवन में क्या पुण्य कमाने को ?
या संन्यास साधना में है दैहिक शक्ति जगाने को ?

रामधारी सिंह 'दिनकर' के ***रश्मिरथी*** खंडकाव्य की इन पंक्तियों में परशुराम का वर्णन किया गया है। परशुराम के आश्रम में कर्ण के आने का प्रसंग है। इन पंक्तियों में कर्ण उपमेय है और उसमें वीरता और संन्यास उपमान का संदेह किया गया है, अतः संदेह अलंकार है।

भ्रांतिमान – जहाँ भ्रम के कारण उपमेय को उपमान मान लिया जाए वहाँ भ्रांतिमान अलंकार होता है।

उदाहरण–

नाक का मोती अधर की कांति से
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रांति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है
सोचता है अन्य यह शुक कौन है?

ये पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त के ***साकेत*** महाकाव्य की हैं। इनमें नायिका ऊर्मिला का वर्णन किया गया है। ऊर्मिला ने नाक में मोती पहन रखा है। इस मोती पर उसके ओठ की लाल आभा पड़ रही है जिससे मोती अनार का दाना नज़र आता है। कोई तोता उसे अनार का दाना मानकर उसे चुगने को बढ़ता है, तभी उसे ऊर्मिला की नाक में दूसरे तोते का भ्रम हो जाता है।

संदेह, उत्प्रेक्षा और भ्रांतिमान में बहुत समानता है, परंतु अंतर भी है। संदेह में उपमेय और उपमान दोनों पर समान वज़न रहता है, जैसे– यह सुंदरी का मुख है या चंद्रमा। उत्प्रेक्षा में दोनों में से एक (उपमान) पर वज़न चला जाता है, जैसे–मुझे तो लगता है कि यह चंद्रमा ही होगा। भ्रांतिमान में उपमेय का ज्ञान रह ही नहीं जाता। संदेह और भ्रांतिमान दोनों अलंकारों में मुख्य अंतर यह है कि संदेह अलंकार में अनिश्चय की स्थिति रहती है जबकि भ्रांतिमान

में निश्चय प्रकट किया ज़ाता है। जैसे—'हलके अँधेरे में पड़ी रस्सी को साँप समझ लेना भ्रांतिमान है; किंतु यह रस्सी है या साँप, इस अनिश्चय में रहना संदेह है।

अन्योक्ति— अन्योक्ति का अर्थ है अन्य की उक्ति। अन्य अर्थात् उपमान की उक्ति या कथन करके उपमेय का निरूपण किया जाए, तो अन्योक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

करि फुलैल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
ए गंधी मतिमंद तू अतर दिखावत काहि।।

कवि बिहारी के इस दोहे में इत्र बेचने वाले से कहा गया है कि तुम उस गँवार व्यक्ति को इत्र क्यों दिखा रहे हो जो उसे पीने की वस्तु समझकर चख रहा है और मीठा कहकर उसकी प्रशंसा कर रहा है। यह वास्तव में किसी गुणी व्यक्ति के प्रति कवि की उक्ति है। कवि गुणी व्यक्ति से कहना चाह रहा है कि अपने गुण या कला का प्रदर्शन नासमझ व्यक्तियों के समक्ष नहीं करना चाहिए।

विरोधाभास— जहाँ विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। विरोधाभास अलंकार में वास्तव में विरोध नहीं होता इसलिए कवि वास्तव में क्या कहना चाहता है— यह विचार करने पर विरोध की प्रतीति समाप्त हो जाती है ।

उदाहरण—

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन हे अस्थिशेष तुम अस्थिहीन।
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल हे चिर पुराण हे चिर नवीन।

सुमित्रानंदन पंत की इन पंक्तियों में गांधी का वर्णन किया गया है। किसी मनुष्य को मांसहीन, रक्तहीन और अस्थिहीन कहने से विरोध प्रतीत होता है। इसी प्रकार चिर पुराण'और चिर नवीन कहना भी परस्पर विरुद्ध कथन का आभास देता है। अंतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

मानवीकरण— प्रकृति या जड़ पदार्थों में मनुष्य के गुणों का आरोप करके चेतन के समान उनकी चेष्टाओं का चित्रण किया जाए तो मानवीकरण अलंकार होता है।

उदाहरण—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत-रजनी।
तारक मय नव वेणी बंधन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित घन-अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसंत-रजनी !

यहाँ महादेवी वर्मा ने वसंत की रात्रि का चित्रण एक सचेतन नायिका के रूप में किया है जो शृंगार किए हुए धीरे-धीरे क्षितिज से उतर रही है। इस प्रकार यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

विशेषण विपर्यय— विपर्यय का अर्थ है – उलटफेर। जब किसी वाक्य में अर्थ की सुंदरता लाने के लिए विशेषण का स्थान उलट दिया जाए या बदल दिया जाए तो विशेषण-विपर्यय अलंकार होता है। यह लक्षणा पर आधारित अलंकार है।

उदाहरण—

इस करुणाकलित हृदय में,
क्यों विकल रागिनी बजती ?
— *जयशंकर प्रसाद*

इन पंक्तियों में रागिनी को विकल कहा गया है। विकल तो मनुष्य होता है, रागिनी नहीं। जो विशेषण मनुष्य के लिए होना चाहिए, वह रागिनी के लिए प्रयुक्त कर दिया गया है। अतः यहाँ विशेषण विपर्यय अलंकार है।

बिंब

हमारे शरीर में श्रोत्र (कान), त्वक् (चमड़ी), चक्षु (आँख), जिह्वा (जीभ) तथा नासिका – ये पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं। इन ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से हम संसार के विभिन्न पदार्थों का अनुभव करते हैं। हम शब्दों को सुनकर, वस्तुओं को छूकर, देखकर, चखकर या सूँघकर अनुभव कर सकते हैं। जब कवि या साहित्यकार अपनी रचना में इन वस्तुओं के अनुभव को इस प्रकार मूर्त करता है कि वह हमें अपनी ज्ञानेंद्रियों के अनुभव के समान प्रतीत होने लगे तो यह बिंब कहलाता है। पाँचों ज्ञानेंद्रियों के अनुभवों के आधार पर बिंब के श्रव्य, स्पृश्य, दृश्य, स्वाद्य और घ्राण – ये पाँच प्रकार हैं।

साहित्य में बिंब किसी भी मूर्त या अमूर्त पदार्थ का मानसिक चित्र है। इसे भावगर्भित शब्दचित्र भी कहा गया है।

उदाहरण–

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुसकान
– बहुत दिनों के बाद।

बहुत दिनों के बाद।
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
– बहुत दिनों के बाद।

बहुत दिनों के बाद।
अब की मैंने जी भर सूँघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से ताजे टटके फूल
– बहुत दिनों के बाद।

बहुत दिनों के बाद।
अब की मैंने जी भर ताल मखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
— बहुत दिनों के बाद।

बहुत दिनों के बाद।
अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब एक साथ इस भू पर
— बहुत दिनों के बाद।

कवि नागार्जुन की इस कविता के पहले बंध में पकी सुनहली फसलों का दृश्य बिंब है। उसके पश्चात् 'धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान' में श्रव्य बिंब है। मौलसिरी के फूलों के वर्णन में घ्राण का बिंब है। पगडंडी की चंदनवर्णी धूल को छूने के उल्लेख के द्वारा स्पृश्य बिंब रचा गया है। तालमखाना खाने और गन्ने चूसने के वर्णन में रसनात्मक या आस्वाद्य बिंब भी है। इस प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, सभी तत्त्वों के समावेश के द्वारा यह कविता पाँचों प्रकार के बिंब प्रस्तुत करती है।

इसी प्रकार महादेवी वर्मा की निम्नलिखित कविता में अमूर्त पदार्थ उर (हृदय) में विद्यमान वियोग या व्यथा के भाव को दीपक के बिंब के द्वारा व्यक्त किया गया है।

उर का दीपक चिर स्नेह अतल
सुधि लौ शत झंझा से निश्चल
सुख से भीनी दुख से गीली
नन्हीं सी साँस अशेष रही।

प्रतीक

प्रतीक का अर्थ होता है चिह्न । एक वस्तु की पहचान के लिए हम दूसरी वस्तु का प्रयोग करते हैं और यह दूसरी वस्तु पहली वस्तु को बताने के लिए सर्व स्वीकृत होती जाती

है, तो वह पहली वस्तु का प्रतीक बन जाती है। कमल सुंदरता का प्रतीक है, क्योंकि शताब्दियों से कविजन सौंदर्य के एक उपमान के रूप में इसका प्रयोग करते आए हैं।

साहित्य में प्रतीक किसी भाव या पदार्थ के लिए परंपरागत चिह्न होता है जो उस भाव या पदार्थ की प्रतीति कराने के लिए संप्रेषण का सर्वाधिक उचित माध्यम बन जाता है। प्रतीक के द्वारा अमूर्त पदार्थ मूर्त हो सकते हैं तथा जटिल सत्य और तथ्य की प्रतीति सहज रूप में हो जाती है।

उदाहरण, –

घूम रहा है कैसा चक्र
वह नवनीत कहाँ जाता है
रह जाता है तक्र।

इस कविता में संसार को एक चक्र के रूप में दिखाया गया है। चक्र यहाँ संसार का प्रतीक है। इसी प्रकार–

यह मंदिर का दीप
इसे नीरव जलने दो।

महादेवी वर्मा की इस पंक्ति में दीप साधना का प्रतीक है। अज्ञेय की कविता ***नदी के द्वीप*** भी एक प्रतीकात्मक कविता है –

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़ कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप, उभार, सैकत-कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह ! इसी से हम बने हैं।

यहाँ व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों को प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया गया है। द्वीप, नदी, भूखंड, धारा आदि प्रतीकों का प्रयोग कवि ने यहाँ किया है। द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है और नदी परंपरा और समय के सतत प्रवाह का प्रतीक है। भूखंड समाज का प्रतीक है। नदी भूखंड और द्वीप को जोड़ती हुई लगातार बहती रहती है। परंपरा व्यक्ति और समाज को जोड़ती है।

अध्याय 7

छंद-विवेचन

छंद का स्वरूप

जैसाकि पहले अध्याय में कहा गया है कि मुख्य रूप से गद्य और पद्य— इन दो विधाओं में साहित्य रचा जाता है। सामान्यतः पद्य की रचना छंद में होती है। यति, गति और लय से समन्वित पद्य का रूप छंद है।

छंद से तात्पर्य

छंद शब्द के मूलतः दो अर्थ होते हैं— आवरण या आच्छादन (ढकना) और प्रवाह। छंद के द्वारा रचना को इस प्रकार बाँध लिया जाता है कि वह बिखरने से बच जाती है। इसके साथ ही छंद के कारण ही रचना का पाठ करते समय हम लय या प्रवाह का अनुभव करते हैं।

छंद के घटक

यति— यति का अर्थ है रुकना। प्रत्येक छंद में कुछ स्थल निर्धारित रहते हैं, पढ़ते समय उन स्थलों पर पहुँचकर रुकना होता है। गद्य के वाक्यों को पढ़ते हुए हम वाक्य का अंश या पूरा वाक्य समाप्त होने पर, जहाँ अल्प विराम या पूर्ण विराम लगा होता है, वहाँ रुकते हैं। छंद में वाक्य गद्य की भाँति पूरा नहीं होता और छंद के पढ़ने में कहाँ ठहरना या रुकना है, इसकी पद्धति भी गद्य के पढ़ने से अलग होती है। छंद के प्रवाह या लय को बनाए

रखने के लिए जहाँ रुकना आवश्यक हो वहाँ रुकना ही यति है। छंद का सही ढंग से पाठ करने के लिए प्रत्येक छंद की यतियों को समझना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए—

भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला, कौसल्या हितकारी।....

इस पंक्ति में आठवें और तेरहवें अक्षरों के 'ला' पर रुकने से छंद में प्रवाह आता है। इसलिए यति इन अक्षरों के बाद है।

गति— गति यति का विलोम है। परंतु छंद में यति और गति एक साथ रहती हैं। जहाँ यति न हो वहाँ बिना अटके या बिना रुके छंद का पाठ करने से गति निर्मित होती है। छंद में लय के साथ एक प्रवाह रहता है। यह प्रवाह ही गति है।

लय— गति और यति के समुचित प्रयोग या समन्वय से छंद में जो गुण उत्पन्न होता है वह लय है। लय के कारण ही किसी कविता का पाठ सुनने में मनोहारी लगता है। उदाहरण के लिए ऊपर उद्धृत चौपाई का चाहे पाठ किया जाए या गायन; लय के कारण वह पाठ या गायन आकर्षक हो जाता है।

छंद के भेद

छंद के भेद मात्रा तथा वर्ण के आधार पर किए जाते हैं। मात्रा के आधार पर जो छंद बनते हैं उन्हें मात्रिक छंद कहा जाता है। वर्णों के आधार पर जो छंद बनते हैं, उन्हें वर्णिक छंद कहा जाता है। वर्णिक छंदों में वर्णों का निश्चित क्रम रहता है और मात्रिक छंद में मात्राओं का।

मात्रा— किसी भी वर्ण के उच्चारण में लगने वाला समय मात्रा है। ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है वह एक मात्रा है। दीर्घ वर्ण के उच्चारण में लगने वाला समय दो मात्रा होता है। 'क' में एक मात्रा है, 'का' में दो मात्रा।

लघु और गुरु— छंद के संदर्भ में वर्णों को ह्रस्व और दीर्घ न कह कर लघु और गुरु कहते हैं। इस प्रकार लघु और गुरु के अनुसार मात्रा के प्रकार हो जाते हैं। लघु के लिए चिह्न खड़ी पाई (।) का तथा गुरु के लिए अवग्रह, जो अंग्रेजी के ऽ के समान होता है, उसके चिह्न का प्रयोग होता है।

लघु और गुरु तथा मात्राओं की गणना के नियम

लघु और गुरु तथा मात्रा की गिनती के संबंध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) अ, इ, उ, ऋ – ये स्वर लघु हैं तथा इनकी एक मात्रा होती है। मात्रा स्वरों की ही गिनी जाती है, व्यंजनों की नहीं।

(2) आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ– ये स्वर गुरु हैं, तथा इनकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

(3) संयुक्ताक्षर के आरंभ में यदि कोई आधा वर्ण है तो उसकी मात्रा नहीं गिनी जाती। जैसे– व्यवधान या व्यवहार में 'व्य' की एक ही मात्रा मानी जाएगी।

(4) यदि किसी शब्द के बीच में या अंत में संयुक्ताक्षर आया है तो संयुक्ताक्षर के पहले वाला वर्ण गुरु माना जाता है। जैसे– भक्त, रक्त आदि में संयुक्ताक्षर है – क्त। इसके पहले के वर्ण भ, र गुरु माने जाएँगे। इस प्रकार भक्त, रक्त– इन दोनों शब्दों में इस क्रम से एक-एक गुरु और फिर एक-एक लघु है, अतएव इन दोनों शब्दों में तीन-तीन मात्राएँ हैं, न कि दो-दो।

(5) अनुस्वार और विसर्ग के पहले यदि लघु वर्ण हो, तो उसे गुरु माना जाएगा। जैसे अंत, वसंत, अंग – इन शब्दों में अ, स और अ के बाद अनुस्वार आया है। इसलिए अनुस्वार के पहले के वर्ण यहाँ गुरु माने जाएँगे। अंत में पहले एक गुरु और फिर एक लघु है (ऽ।)। 'वसंत' में एक लघु, फिर एक गुरु और फिर एक लघु है (।ऽ।)। इसी प्रकार रंग, भंग आदि शब्दों में र और भ गुरु माने जाएँगे और इनकी दो मात्राएँ जोड़कर रंग या भंग शब्दों में तीन-तीन मात्राएँ मानी जाएँगी। इसी प्रकार दुःख में दु के पश्चात् विसर्ग आया है, तो इस दु को गुरु माना जाएगा। अंतःकरण में त के पश्चात् विसर्ग है, अतः यह त गुरु माना जाएगा और इसकी दो मात्राएँ होंगी।

(6) किसी लघु वर्ण के बाद अनुस्वार के स्थान पर यदि चंद्रबिंदु हो तो वह लघु वर्ण गुरु नहीं माना जाएगा। जैसे— 'हंस' में ह के बाद अनुस्वार है, तो यह ह तो गुरु माना जाएगा पर हँसी में ह के बाद चंद्रबिंदु है, तो यह ह गुरु नहीं माना जाएगा।

(7) हलंत के पहले का लघु वर्ण भी गुरु माना जाएगा। जैसे— श्रीमन् में हलंत न् के पहले म है, यह म गुरु होगा। न् में स्वर नहीं है, अत: न् की मात्रा नहीं गिनी जाएगी।

गण

तीन वर्णों का समूह गण कहा जाता है। छंदों में आठ प्रकार के गणों का प्रयोग किया जाता है। इन गणों को समझने के लिए एक सूत्र है— यमाताराजभानसलगम्। इस सूत्र को याद रखने से गणों के नाम तथा उनमें लघु गुरु वर्ण किस क्रम से रहते हैं, यह सरलता से समझा जा सकता है।

इस सूत्र में यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण— इन आठ गणों के प्रथम अक्षर के अनुसार आठ वर्ण इसी क्रम से रखे गए हैं और जिस गण में वर्णों के लघु-गुरु का क्रम जानना हो, उसके प्रथम अक्षर के साथ आगे के दो अक्षर और मिलाकर क्रम जाना जा सकता है। इस प्रकार आठों गणों में तीन-तीन वर्ण रहते हैं और इस सूत्र के अनुसार आठों गणों में लघु-गुरु क्रम तथा मात्राओं की संख्या इस प्रकार दिखाई जा सकती है—

गण का नाम	उदाहरण	लघु गुरु का क्रम	मात्राएँ
1. यगण	यमाता	। S S	5
2. मगण	मातारा	S S S	6
3. तगण	ताराज	S S ।	5
4. रगण	राजभा	S । S	5
5. जगण	जभान	। S ।	4

6. भगण	भानस	S I I	4
7. नगण	नसल	I I I	3
8. सगण	सलगम्	I I S	4

छंद का विभाजन – प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। इनको पाद या पद भी कहा जाता है। दूसरे और चौथे चरण को सम चरण कहते हैं, पहले और तीसरे को विषम चरण। छप्पय या कुंडलिया जैसे छंदों में छह चरण होते हैं। एक चरण को प्राय: एक पंक्ति में लिखा जाता है। दोहा, सोरठा जैसे छोटे छंदों में दो-दो चरण भी एक पंक्ति में लिखे जाते हैं।

सम, अर्धसम और विषम छंद – जिस छंद के चारों चरणों में मात्राएँ एक समान रहती हों उसे सम छंद कहते हैं। जब किसी छंद के पहले और तीसरे में तथा दूसरे और चौथे में मात्राएँ एक समान रहती हों तो अर्धसम छंद कहते हैं। जब किसी छंद के चारों चरणों में मात्राएँ अलग-अलग रहती हों तो उसे विषम छंद कहते हैं।

अंत्यानुप्रास या तुक – किसी छंद के प्रत्येक चरण के अंत में एक सी ध्वनि होना अंत्यानुप्रास या तुक है। अनेक छंदों में अंत्यानुप्रास या तुक का निर्वाह होता है।

मात्रिक छंद : दोहा – दोहा अर्धसम मात्रिक छंद है। इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में 11-11 मात्राएँ होती हैं तथा विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 13-13 मात्राएँ होती हैं। दोहे के विषम चरणों के प्रारंभ में जगण (I S I) नहीं रहना चाहिए। सम चरणों के अंत मे दो वर्णों में पहला गुरु (S) फिर अंतिम वर्ण लघु (I) होना चाहिए।

दोहे के सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में अंत्यानुप्रास या तुक रहती है, विषम चरणों (पहले और तीसरे) में नहीं।

उदाहरण —

।।।। ।।	ऽ	ऽ।ऽ	= 13	ऽ।	।।।	ऽ	ऽ।	= 11
रहिमन चुप	हूवै	बैठिए,		देखि	दिनन	को	फेर।	
।। ऽऽ ।।	ऽ। ऽ		= 13	।।। ।	।।	ऽ	ऽ।	= 11
जब नीके दिन	आइ हैं,			बनत न	लगि	है	बेर।।	

सोरठा— सोरठे को दोहे का उलटा कहा जा सकता है। इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में 13-13 मात्राएँ होती हैं तथा विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 11-11 मात्राएँ होती हैं। दोहे के समान इसके पहले और दूसरे चरण की मात्राओं का योग 24 होता है। इसी प्रकार तीसरे और चौथे चरण की मात्राओं का योग भी 24 होता है। परंतु दोहे के विपरीत इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में अंत्यानुप्रास या तुक नहीं रहती, विषम चरणों (पहले और तीसरे) में तुक होती है।

उदाहरण—

।।	।।	ऽ।।	ऽ।	= 11	ऽ।	।ऽ	।।।।	।ऽ = 13
लिख	कर	लोहित	लेख,		डूब	गया	दिनमणि	अहा।
ऽ।ऽ।		।।	ऽ।	= 11	ऽ।।	।।।।	ऽ	।ऽ = 13
व्योमसिंधु		सखि	देख,		तारक	बुदबुद	दे	रहा।।

रोला— रोला एक सम मात्रिक छंद है। इस छंद के प्रत्येक चरण में 24-24 मात्राएँ होती हैं तथा प्रत्येक चरण में 11वीं और 13वीं मात्रा पर यति होती है।

उदाहरण—

ऽ।	।ऽ	।।ऽ।	= 11	ऽ।	।।ऽ।	।ऽ	ऽ	= 13
किंतु	मिला	अपमान		और	व्यवहार	बुरा	था	

।। S । S । । S = 11	S।। S। । S S = 13
मनस्ताप से सबके	भीतर रोष भरा था।
S। ।।। S ।।। = 11	। S S S S S S = 13
क्षुब्ध निरखते बदन	इड़ा का पीला पीला
।।। ।।। S । S = 11	। S S S।। S S = 13
उधर प्रकृति की रुकी	नहीं थी तांडव -लीला।।

चौपाई– चौपाई भी एक सममात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं। चौपाई के दो चरणों को अर्धाली कहा जाता है। इसमें अंत्यानुप्रास या तुक का निर्वाह किया जाता है। चौपाई के अंत में जगण (। S ।) या तगण (SS।) नहीं होना चाहिए।

उदाहरण–

S।। S । । S।। ।। ।। = 16	।।। ।।। ।। S। ।।। ।। = 16
कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।	कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
S।। ।।। S। S SS = 16	।।S S। ।।। । । SS = 16
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही ।	मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्हीं ।।

हरिगीतिका– हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में 28–28 मात्राएँ होती हैं तथा प्रत्येक चरण में 16 वीं और 12वीं मात्रा पर यति होती है। प्रत्येक चरण के अंत के दो वर्णों में उपांत्य (अंत से पहले वाला) वर्ण लघु और अंतिम वर्ण गुरु होता है।

उदाहरण–

।।S। S S S । S ।। ।। । S SS S। =16+12=28

खगवृंद सोता है अतः कल कल नहीं होता वहाँ

II SI SII S III S SI S S S IS = 28

बस मंद मारुत का गमन ही मौन है खोता जहाँ।

II III SS S IISI II IIIS S IS = 28

इस तरह धीरे से परस्पर कह सजगता की कथा।

S SIS S SI S S SI S IISIS = 28

यों दीखते हैं वृक्ष ज्यों हो, विश्व के प्रहरी यथा।।

वर्णिक छंद : *कवित्त*-- कवित्त के प्रत्येक चरण में 31-31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के 16वें और फिर 15वें वर्ण पर यति रहती है। प्रत्येक चरण का अंतिम वर्ण गुरु होता है।

उदाहरण--

भुज-भुजगेस की वै संगनि भुजंगिनि -सी,
        खोदि खोदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन,
        पैरी पार जात परवाह ज्यों जलन के।।
रैया राव चँपति के छत्रसाल महाराज,
        भूषन सकें करि बखान को बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर,
        तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।।

सवैया — सवैया छंद के कई भेद हैं। ये भेद गणों के संयोजन के आधार पर बनते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मत्तगयंद सवैया है। इसे मालती सवैया भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और अंत में दो गुरु वर्ण होते हैं। इस प्रकार इस सवैया के प्रत्येक चरण में 23-23 वर्ण होते हैं ।

उदाहरण –

सेस महेस गनेस सुरेस दिनेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारि रहे पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर कि छोहरियाँ छछिया भरि छाछ प नाच नचावैं।

अंतिम चरण में हम देखते हैं कि 'अहीर कि' के स्थान पर यदि 'अहीर की' रख दिया जाए तो छंद टूटेगा, क्योंकि भगण नहीं बनेगा। इसी प्रकार 'छाछ प' के स्थान पर 'छाछ पे' करने पर भी छंद टूटता है।

मुक्त छंद

जब किसी एक छंद के अनुशासन का पालन न किया जाए और कविता में भीतर ही भीतर चलने वाली लय को बनाए रखते हुए रचना की जाए तो ऐसी रचना मुक्त छंद की रचना होती है। मुक्त छंद का आशय छंद का त्याग नहीं है, इसलिए छंद मुक्त कविता न कहकर मुक्त छंद की कविता कहा जाता है। अर्थात् इसमें कवि अपने आशय और अभिव्यक्ति के अनुरूप अपना छंद स्वयं रच लेता है, किसी एक पूर्व-निर्धारित छंद के नियमों को वह नहीं अपनाता। निराला की ***जूही की कली*** मुक्त छंद का सुंदर उदाहरण है।

परिशिष्ट

साहित्य-सौंदर्य विवेचन

जब हम किसी मनुष्य के सौंदर्य का विवेचन करते हैं तो हम बताते हैं कि वह मनुष्य हमें क्यों अच्छा लगता है। हम उसके रूप-रंग और आकार-प्रकार के विषय में अपना मत देते हैं; इसके साथ ही हम उसके आंतरिक गुणों के विषय में भी अपना मंतव्य देते हैं। जिस प्रकार मनुष्य के सौंदर्य के विवेचन में हम बाह्य पक्ष और आंतरिक पक्ष दोनों पर विचार करते हैं, उसी प्रकार साहित्य के सौंदर्य का विश्लेषण भी बाह्य पक्ष (कला पक्ष) और आंतरिक पक्ष (भाव पक्ष) के विवेचन के द्वारा किया जाता है।

काव्य-सौंदर्य विवेचन

कोई भी रचना हमें इसलिए अच्छी लगती है कि उसमें सौंदर्य होता है। काव्य-सौंदर्य से आशय है किसी काव्य-कृति में भाव, विचार आदि वस्तुगत तत्त्वों का और गुण, अलंकार, भाषा-शैली आदि शिल्पगत (रूपगत) तत्त्वों का सामंजस्य । यह सामंजस्य जितना ही उत्कृष्ट होता है कृति उतनी ही सुंदर प्रतीत होती है, इसलिए काव्य-सौंदर्य के विवेचन में हम उन तत्त्वों पर विचार करते हैं, जिनके कारण कोई रचना हमें अच्छी लगती है।

वस्तुगत सौंदर्य

वस्तुगत सौंदर्य के अंतर्गत सबसे पहले यह विचार करना चाहिए कि रचना की विषयवस्तु का स्वरूप क्या है ? यदि रचना में कोई कथा या प्रसंग है तो विषयवस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक,

सामाजिक, राजनैतिक आदि हो सकती है। यदि वह मुक्तक कोटि की रचना है तो विषयवस्तु वैयक्तिक हो सकती है। इसके पश्चात् इस विषयवस्तु के महत्त्व या प्रासंगिकता पर विचार करना चाहिए। महत्त्व या प्रासंगिकता को समझने के लिए वस्तुगत सौंदर्य के अंतर्गत निम्नलिखित तत्त्वों पर विचार किया जा सकता है – (1) भाव अथवा विचार की व्यापकता और वैविध्य, (2) नवीनता या मौलिकता, (3) वस्तुवैशिष्ट्य, (4) जीवनसत्य, (5) संदेश।

भाव अथवा विचार की व्यापकता के अंतर्गत हम यह परीक्षण करते हैं कि रचना में अभिव्यक्त भावनाएँ या विचार रचनाकार के निजी हैं या सामाजिक। भावों और विचारों की व्यापकता तथा विविधता के कारण रचना हमारे लिए ग्राह्य बनती है और उनकी संकीर्णता के कारण अग्राह्य। किसी रचना को सुंदर बनाने में भावों और विचारों की व्यापकता का बड़ा योगदान रहता है। वैविध्य से तात्पर्य है कि वह विषय अन्य विषयों को कितना समाहित किए हुए है।

नवीनता या मौलिकता के अंतर्गत निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार किया जाना चाहिए कि विवेच्य कृति में जो बात कही गई है, क्या वह पहले की रचनाओं में उसी रूप में व्यक्त की जा चुकी है अथवा क्या इस कृति में कोई ऐसी बात कही गई है, जो पहले की रचनाओं में इस रूप में नहीं कही गई है ? इसके साथ ही यह भी विचारणीय है कि उस रचना में जो विषयवस्तु उठाई गई है, उसकी अपनी विशेषताएँ क्या हैं। रचना की विषयवस्तु का जिस तरह प्रतिपादन या निरूपण लेखक ने किया है, क्या उससे जीवन के किसी ऐसे सत्य का उद्घाटन होता है, जिस पर हम चिंतन मनन कर सकें। इन सबके विवेचन के बाद यह विचार किया जाना चाहिए है कि उस रचना में व्यक्त कथ्य की विशेषता क्या है और उससे हमें क्या संदेश प्राप्त होता है। क्या उससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर प्रकाश पड़ता है ? या क्या उसके माध्यम से किसी मनौवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन होता है, जो हमें अधिक जानकारी, सूझबूझ या बुद्धिमत्ता प्रदान करें ?

शिल्पगत सौंदर्य

शिल्पगत सौंदर्य के अंतर्गत हम कृति के कलापक्ष पर विचार करते हैं। इसमें इन तत्त्वों पर विचार किया जाना चाहिए– (1) भाषा-शैली का वैशिष्ट्य, (2) शब्दसामर्थ्य, (3) गुणदोष, (4) अलंकारनिर्देश, (5) छंद, (6) बिंब, (7) प्रतीक, (8) समग्र मूल्यांकन।

भाषा-शैली के वैशिष्ट्य में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि रचनाकार ने जो विषय चुना है, उसके अनुरूप भाषा-शैली है या नहीं। भाषा और शैली की दृष्टि से यह भी विवेचन किया जाना चाहिए कि भाषा सरल है या क्लिष्ट है, समासबहुल है या अल्प समास वाली है। शब्दसामर्थ्य के अंतर्गत रचनाकार के शब्दप्रयोग, शब्दचयन का परीक्षण किया जाता है। जिन शब्दों को रचनाकार ने चुना है वे विषय को प्रकट करने के लिए किस प्रकार और कहाँ तक उपादेय हैं। शब्दशक्ति, रस, गुण-दोष, अलंकार, छंद, बिंब और प्रतीक के बारे में पुस्तक में पहले चर्चा की गई है।

यहाँ उदाहरणस्वरूप चार काव्यांशों के काव्य-सौंदर्य पर विचार किया जा रहा है ताकि विद्यार्थी स्वयं भी काव्य-सौंदर्य के बिंदुओं को समझकर रचना-विशेष का सौंदर्य निरूपण करने में समर्थ हो सकें –

(1)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै।
कमल नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यौ, क्यों करील फल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

वस्तुगत सौंदर्य

सूरदास का यह पद गीत विधा की रचना है। कवि ने इस पद में अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्तिभाव प्रकट किया है। सूरदास कहते हैं कि अपने आराध्य को छोड़कर उनका मन अन्यत्र सुख नहीं पा सकता। जैसे सागर में चलते जहाज पर बैठा हुआ पक्षी जहाज को छोड़ सागर के ऊपर उड़ान भर ले, तो भी उसे वापस जहाज पर आना ही पड़ता है।

इस पद में कवि सूरदास ने अपने मन के अंतरंग भाव को प्रकट किया है। इस प्रकार यह एक विषयीप्रधान रचना है। कवि यह संदेश देता है कि सुलभ और आनंदप्रद श्रीकृष्ण की भक्ति को जिसने प्राप्त कर लिया है वह व्यक्ति अन्यत्र सुख नहीं पा सकता ।

शिल्पगत सौंदर्य

भाषा-शैली – इस पद की भाषा सरल तथा सरस ब्रजभाषा है और भक्तिभाव को इसमें मार्मिक रूप से प्रकट किया गया है। कहीं भी क्लिष्ट शब्दों अथवा लंबे समासों का प्रयोग नहीं किया गया है।

शब्दशक्ति – इस पद में व्यंजना का उत्तम प्रयोग है, जिसके द्वारा कवि का भक्तिभाव और आराध्य के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट हुई है। आराध्य के लिए जहाज, परमगंगा, अंबुज रस तथा कामधेनु के उपमानों का प्रयोग किया गया है, जिससे यह आशय प्रकट होता है कि आराध्य ही संसार सागर से पार करा सकते हैं, वे अत्यंत पवित्र और सुंदर हैं तथा वे सारी मनोकामनाएँ पूरी कर सकते हैं। इसी प्रकार कूप, करील फल और छेरी के उपमान भी संसार की निरर्थकता और तुच्छता को व्यंजित करते हैं।

गुण – संपूर्ण पद में माधुर्य और प्रसाद गुणों का सुंदर समावेश है। गुणों का यह समावेश विषयवस्तु के अनुरूप है। भक्ति जैसे कोमल भाव के लिए माधुर्य गुण सर्वथा उपादेय है। 'मन अनत', 'कमल नैन', 'परम गंग' आदि शब्दों में कोमल वर्णों के विन्यास से माधुर्य गुण आ गया है।

अलंकार—'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवे '— इस पंक्ति में उपमा अलंकार है। शेष पंक्तियों में निदर्शना अलंकार का समावेश है।

बिंब— जहाज के पंछी का सागर पर उड़ान भरना और फिर लौट करके जहाज पर आना— यह वर्णन सुंदर चाक्षुष या दृश्य बिंब रचता है। इसी प्रकार शेष सभी पंक्तियों में चाक्षुष बिंबों का प्रभावशाली प्रयोग कवि ने किया है। 'मधुकर अंबुज रस चाख्यौ' तथा 'करील फल खावै' में आस्वाद्य बिंब है। 'छेरी कौन दुहावै' में दृश्य बिंब तथा स्पर्श बिंब दोनों का समन्वय है।

प्रतीक— इस पद में सागर, जहाज और पंछी के प्रतीकों का बड़ा सुंदर उपयोग किया गया है। सागर भवसागर या संसार है। पक्षी इसमें भटकता हुआ जीव है। यह जीव रूपी पंछी सागर या संसार में चाहे जितना भटक ले या उड़ ले, इसे जहाज में अपने कर्णधार (आराध्य श्रीकृष्ण) के पास आना ही पड़ता है।

समग्र मूल्यांकन— यह पद एक भक्त कवि की रचना है। भक्ति साहित्य की विशेषताओं तथा भक्तिकालीन जीवन दर्शन का इसमें सुंदर समन्वय हुआ है। इसी प्रकार गुण, अलंकार, रीति, शब्दचयन, भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी यह एक सफल रचना है। अपने समग्र प्रभाव में यह पद हमारे चित्त को भक्तिभाव से सराबोर करता है।

(2)

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घन आनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

वस्तुगत सौंदर्य

यह कवि घनानंद द्वारा रचित एक सवैया है। यह विरह के प्रसंग की उक्ति है। यह एक विषयी प्रधान रचना है। इसमें कवि ने अपने मन का अंतरंग भाव प्रकट किया है। प्रेम के

सच्चे स्वरूप को बताते हुए घनानंद कहते हैं कि उसमें सयानप (सयानापन) तथा बाँकापन (होशियारी) नहीं, सच्चाई होती है। कपट के लिए उसमें स्थान नहीं है। प्रेमी और प्रेमिका दोनों जब एक हो जाते हैं, तो वे अपने आप को एक दूसरे से अलग नहीं समझते।

कवि ने बहुत ही सरल शब्दों में यहाँ सच्चे प्रेम का स्वरूप बताते हुए निश्छल भाव से एक प्रेमी के उपालंभ (शिकायत) को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। यह छंद नायक की ओर से नायिका के लिए कही गयी उक्ति के रूप में भी लिया जा सकता है और नायिका की ओर से नायक के लिए कही गयी उक्ति भी इसे माना जा सकता है। वास्तव में यह ऐसे व्यक्ति का कथन है, जिसने सच्चे हृदय से प्रेम किया है। सच्चा प्रेम हृदय की निर्मलता में ही हो सकता है, उसमें छल कपट के लिए स्थान नहीं है। इस प्रकार घनानंद की यह रचना हमें प्रेम की पवित्रता का बोध कराती है तथा मौलिक रूप से प्रेम की वास्तविकता का परिचय भी देती है। इसमें यह संदेश भी छिपा हुआ है कि हम जिससे प्रेम करते हैं, उससे न तो कोई दुराव छिपाव करना चहिए, न कोई छल कपट।

शिल्पगत सौंदर्य

भाषा– प्रस्तुत सवैया प्रांजल एवं सहज ब्रजभाषा में है जिसमें प्रेमी हृदय की व्याकुलता, सरलता और निष्कपटता प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हुई है।

शब्दशक्ति– प्रेम के रास्ते का सीधा होना, चतुराई का टेढ़ापन उसमें न होना, आपनपौ तजना, पाटी पढ़ना, मन लेना, छटाँक न देना – इन सभी में लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया गया है। 'यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं'– इस कथन में व्यंजना का अच्छा प्रयोग है। इसका वाच्य अर्थ तो यह है कि प्रेम में केवल एक ही अंक होता है। व्यंजना यह है कि सच्चा प्रेम करने वाले एक को दूसरे से अलग करके देख नहीं सकते, वे दो देह एक प्राण हो जाते हैं। प्रेमी की चेतना में एक ही सत्ता होती है। कबीर ने भी कहा है –

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँय।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाँय।।

गुण—इस सवैये में आद्यंत माधुर्य के साथ प्रसाद गुण का निर्वाह किया गया है। यह गुण छोटे-छोटे सरल शब्दों और सहज वाक्य विन्यास के द्‌वारा निर्मित हुआ है। पूरे सवैये में कोई समास नहीं है। एक भी जटिल या दुरूह शब्द कवि ने नहीं रखा है।

अलंकार— 'सूधौ सनेह' और 'सुजान सुनौ' में अनुप्रास अलंकार है। 'मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं'— इस कथन में परिवृत्ति अलंकार है, जो विनिमय (अदला-बदली) का भाव बताने पर होता है। 'मन' और 'छटाँक'— इन दोनों शब्दों में श्लेष है। मन के दो अर्थ हैं— चित और एक तौल (चालीस सेर)। इसी प्रकार छटाँक के भी दो अर्थ हैं— छटा का अंक (शोभा की एक झलक) तथा तौल का छोटा परिमाण (आज के तौल में दस ग्राम से कुछ अधिक, सोलह छटाँक का एक सेर होता है)। घनानंद के अलंकार प्रयोग की यह अपनी विशेषता कही जा सकती है कि श्लेष होने पर भी उनकी रचना में कहीं भी क्लिष्टता नहीं आई है। इस छंद की अंतिम पंक्ति विशेष रूप से चमत्कारपूर्ण है। इसमें उपालंभ (शिकायत) के भाव को बड़े ही सरस रूप से प्रकट किया गया है। मन और छटाँक शब्दों के श्लेष अलंकार से युक्त प्रयोग ने इसमें कलापक्ष का भावपक्ष के साथ सुंदर समन्वय कर दिया है। कवि यहाँ यह भी बताना चाहता है कि प्रेमी का मन, मन भर वज़न की तरह गुरु गंभीर है, उसके सामने रूप छटाँक की तरह हलका है। फिर भी विरही व्यक्ति अपने प्रिय के इसी रूप की एक झलक के लिए तरसता रहता है।

रस— इस सवैये में वियोग शृंगार है। वियोग में होने वाले पीड़ा के अनुभव को कवि ने मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। विशेष रूप में प्रेमी का मन प्रिय के लिए पूरी तरह से समर्पित है, फिर भी वह अपने प्रिय की एक झलक पाने के लिए तरसता रहता है — यह भाव यहाँ वियोग शृंगार के अनुभव को तीव्रता देता है।

समग्र मूल्यांकन

यद्‌यपि घनानंद रीतिकाल में हुए पर उनकी रचना रीतिकाल की सीमाओं से मुक्त हैं, इसीलिए वे रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं। इस सवैये के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि घनानंद

के काव्य की विशेषता कलापक्ष के चमत्कार के स्थान पर भावपक्ष की गहराई में है। युगीन प्रवृत्ति से ऊपर उठकर उनकी कविता आज के स्वच्छंदतावादी काव्य का आस्वाद भी देती है। इसके साथ ही अभिव्यक्ति की नवीनता और मौलिकता भी यहाँ द्रष्टव्य है।

(3)

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग कर विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले,
पर तुझे है नाश पथ पर चिह्न अपने छोड़ जाना !
जाग तुझको दूर जाना !
बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले ?
पथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !
वज्र का उर एक छोटे अश्रु-कण में धो गलाया ?
दे किसे जीवन सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया?
सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या ?

विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बन कर पास आया?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना ?
जाग तुझको दूर जाना !
कह न ठंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी,
है तुझे अंगार शैया पर मृदुल कलियाँ बिछाना !
जाग तुझको दूर जाना !

वस्तुगत सौंदर्य

इस प्रगीत की रचना महादेवी वर्मा ने की है। यह एक उद्बोधन गीत है, जिसमें कर्मठता, त्याग और बलिदान की भावना से भरपूर आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है। कवयित्री ने इसमें जीवन से पलायन न करने का आह्वान किया है। यह आह्वान कवयित्री अपने स्वयं के लिए कर रही है और पाठक भी इस गीत को पढ़कर उससे कर्मठता, त्याग और बलिदान की प्रेरणा पाता है। इस प्रकार इस गीत में आत्मनिष्ठा या विषयीप्रधानता भी है और विषयनिष्ठता भी।

शिल्पगत सौंदर्य

भाषा-शैली— इस गीत की भाषा संस्कृतनिष्ठ प्रांजल और परिनिष्ठित खड़ी बोली है। महादेवी वर्मा ने अनुभूति की सूक्ष्मता और गंभीरता को विरोधमूलक शब्दावली, असंभव घटनाओं के वर्णन, विविध बिंबों का सृजन करने वाली चित्रात्मक शैली के द्वारा निरूपित किया है। इस कविता की भाषा संकल्प और दृढ़ता के भावों को प्रकट करने में पूरी तरह समर्थ है।

शब्दशक्ति— कवयित्री ने इस गीत में लक्षणा का सुंदर प्रयोग किया है। निष्ठुर तूफान का जागना, मौन अलसित व्योम का रोना, तिमिर की घोर छाया का आलोक को पीना, मोम के बंधनों द्‌वारा किसी को बाँधा जाना इत्यादि कथनों में लक्षणा शक्ति है। इसी प्रकार अचल हिमगिरि के हृदय में कंप होने का उल्लेख, तिमिर आलोक को पीकर डोलने के कथन आदि के द्‌वारा यह अर्थ व्यंजित किया गया है कि चाहे कितनी ही असंभव घटनाएँ घट जाएँ, साधना के व्रती को अपने मार्ग से विचलित नहीं होना है। इस प्रकार व्यंजना शक्ति का प्रयोग भी इस कविता में समीचीन है।

गुण— यद्‌यपि महादेवी मुख्य रूप से माधुर्य गुण की रचना के लिए विख्यात हैं परंतु इस गीत में ओज गुण का उन्होंने प्रभावशाली विन्यास किया है। पूरे गीत में आदि से अंत तक ओजस्विता व्याप्त है। यह ओजस्विता कठोर वर्णों के प्रयोग से नहीं, बल्कि अर्थ में गति, कर्म और तेजस्विता के भावों की अभिव्यक्ति के कारण यहाँ निर्मित हुई है। पूरे गीत में स्थिरता के स्थान पर गतिशीलता के चित्र हैं — जैसे अचल हिमगिरि के हृदय में कंप होना, प्रलय होना, विद्‌युत शिखाओं में तूफान का जागना आदि। इन अर्थों के द्‌वारा गीत में ओज गुण का प्रभावशाली निर्माण हुआ है। इसी प्रकार 'जलती कहानी', 'राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी'— इन अभिव्यक्तियों में चित्त को दीप्त करने की पर्याप्त क्षमता है, जो ओज गुण की वृद्‌धि करती है।

अलंकार— 'अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप हो ले'— इस पंक्ति में विरोधाभास अलंकार है। जो अचल है, उसमें कंप कैसे हो सकता है? इस प्रश्न के कारण यहाँ विरोध का आभास होता है। 'मौन अलसित व्योम' में विशेषण विपर्यय अलंकार है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चेतन प्राणी मौन या अलसित होते हैं, व्योम (आकाश) नहीं। कवयित्री ने चेतन के लिए काम में आने वाले विशेषण का आकाश पर आरोप किया है, इसलिए विशेषण विपर्यय हो गया है। इसी प्रकार 'निष्ठुर तूफान', 'जलती कहानी' आदि प्रयोगों में भी विशेषण विपर्यय अलंकार है। 'वज्र का उर', 'वात का उपधान' तथा 'जीवन सुधा', 'मानिनी

जय पताका'— इन प्रयोगों के द्वारा रूपक अलंकार भी इस गीत में प्रयुक्त हुआ है। इनमें उर, वात तथा जीवन उपमेय हैं और वज्र, उपधान (तकिया) और सुधा (अमृत) उपमान हैं।

बिंब-विधान— यह पूरा गीत ही प्रभावशाली बिंबों से युक्त है। 'आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया' में सघन अंधकार का जो बिंब रचा गया है, वह चाक्षुष प्रभाव छोड़ता है। जबकि 'जाग कर विद्युत् शिखाओं में निठुर तूफान बोले' में चाक्षुष और श्रव्य दोनों बिंब एक साथ रचे गए हैं, हम यहाँ बिजली की कौंध का प्रत्यक्ष दर्शन भी करते हैं और तूफान के शोर को सुनते भी हैं। 'सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या' में स्पर्श बिंब भी है।

प्रतीक योजना— 'मोम के बंधन' अस्थिर, कोमल तथा क्षणभंगुर संबंधों के प्रतीक हैं। कवयित्री का कहना है कि देशसेवा का व्रत लेने वाले को सांसारिक बंधनों में नहीं बँधना चाहिए, जो क्षणभंगुर हैं। इसी प्रकार 'तितलियों के पर रँगीले' सांसारिक सौंदर्य के प्रतीक हैं, यह सौंदर्य भी नश्वर तथा मूल्यहीन है। 'मधुप की मधुर गुनगुन' और 'फूल के दल ओस-गीले' संसार के विषयों या भोग के साधनों के प्रतीक हैं।

छंद— 'जाग तुझको दूर जाना' इस स्थायी की पंक्ति को छोड़कर इस गीत की शेष सभी पंक्तियों में प्रत्येक पंक्ति में 28-28 मात्राएँ हैं। इस प्रकार हरिगीतिका छंद का प्रयोग किया गया है।

समग्र मूल्यांकन— स्वाधीनता आंदोलन की प्रेरणा से रचित इस जागरण गीत में भीषण कठिनाइयों की चिंता न करते हुए अपने लक्ष्य की ओर निरंतर आगे बढ़ते रहने का संदेश है। वस्तु वैशिष्ट्य और शिल्पगत सौंदर्य दोनों ही दृष्टियों से यह एक सुंदर रचना है।

(4)

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था

अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी
धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे, सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी
खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रख कर
सधे कदम रख कर के आए
लोग सिमट कर आँख गड़ाए
लगे देखने उसको, जिसकी तय था हत्या होगी।
निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौल कर चाकू मारा
छूटा लोहू का फ़व्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी?
भीड़ ठेल कर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो-देखो — बार बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें, जिन्हें संशय था हत्या होगी

वस्तुगत सौंदर्य

रघुवीर सहाय की ***रामदास*** शीर्षक इस प्रख्यात कविता में रामदास नाम के किसी साधारण व्यक्ति की दिन दहाड़े हत्या की घटना का वर्णन किया गया है।

वस्तुगत विशेषता की दृष्टि से हम देखते है कि रामदास कविता की विषयवस्तु नवीन तथा मौलिक है। यह आज के सामाजिक जीवन से संबंध रखती है। रामदास एक साधारण आदमी है। गुंडे दिन दहाड़े लोगों के देखते-देखते उसकी हत्या कर देते हैं। इस दृश्य का वर्णन करते हुए कवि यह दिखाना चाहता है कि मामूली आदमी कहीं भी कभी भी मारा जा सकता है। यह कविता आज की संवेदनहीनता पर गहरी चोट करती है।

इस कविता में रामदास की हत्या प्रसंग का जिस तरह वर्णन है, उस तरह पहले की रचनाओं में इस रूप में वर्णित नहीं हुआ है। इस वर्णन के द्वारा यह कविता आज के जीवन के कटु सत्य को उद्‌घाटित करती है तथा उसके बारे में हमें सोचने के लिए प्रेरित करती है।

इस तरह यह कविता हमें अपने समय की जटिल सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों के बारे में अधिक जागरूक बनाती है। यह आज के समाज में फैली हुई संवेदनहीनता और क्रूरता के विरुद्‌ध एक चेतावनी है।

शिल्पगत सौंदर्य

भाषा-शैली— शिल्प की दृष्टि से इस कविता में खड़ी बोली का प्रयोग बड़ा सधा हुआ है। रामदास की हत्या का वातावरण बनाने के लिए आतंक और दमन का अनुभव कराने वाली भाषा और समुचित शब्द प्रयोग के द्‌वारा कवि ने वातावरण का निर्माण किया है। पहली पंक्ति में 'चौड़ी सड़क गली पतली थी'— इसमें महानगर की बड़ी सड़क और उसके पास निकली छोटी सी गली का एक बिंब प्रस्तुत किया गया है। चौड़ी सड़क महानगर के वैभव और सत्ता का प्रतीक है, पतली गली दरिद्रता और मामूली आदमी का। रामदास किसी पतली गली से आया हुआ साधारण व्यक्ति है। इसी प्रकार 'दिन का समय घनी बदली थी'— इस पंक्ति में दिन में बादल के घिरे होने का कथन

विषाद का वातावरण निर्मित करता है। इन दोनों पंक्तियों के क्रम में यह उचित ही कहा गया है कि 'रामदास उस दिन उदास था अंतकाल आ गया पास था।' इसी प्रकार 'हाथ तौल कर चाकू मारा', 'भीड़ ठेल कर लौट गया वह'— इन कथनों में हत्या करने वाले गुंडे की चेष्टाओं का स्वाभाविक वर्णन क्रूरता के अनुभव को पैनापन देता है।

बिंब— रामदास कविता मुख्य रूप से बिंबात्मक कविता है। इसमें सारे घटना प्रसंग को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उसका दृश्य या चाक्षुष बिंब हमारे मानस पटल पर अंकित होता जाता है। पहली दो पंक्तियाँ धरती और आकाश के बिंब को विशेष संदर्भ में उकेरती हैं।

प्रतीक— इस कविता में रामदास एक सामान्य व्यक्ति का प्रतीक है। 'रामदास' यह नाम कवि ने सूझ-बूझ के साथ रखा है। यह देश के किसी भी सामान्य नागरिक का नाम हो सकता है।

छंद— रघुवीर सहाय ने प्रायः मुक्त छंद में ही कविताएँ लिखी हैं। परंतु *रामदास* कविता में उन्होंने विशेष अभिप्राय से छंद का बड़ा ही सार्थक और साभिप्राय प्रयोग किया है। इस कविता में कुल पाँच बंध हैं। प्रत्येक बंध की प्रथम चार पंक्तियों में चौपाई छंद है और पाँचवीं पंक्ति में छंद का प्रवाह अचानक तोड़ा गया है। चौपाई छंद का प्रयोग करके कवि यहाँ यह दिखाना चाहता है कि हत्या का बयान लोगों के लिए कीर्तन की तरह है, उससे वे चौंकते नहीं हैं। हत्या का होना समाज में आम बात हो गई है। प्रत्येक बंध की अंतिम पाँचवीं पंक्ति में यद्यपि चौपाई छंद को एकदम से तोड़ा गया है पर इस पंक्ति में 28-28 मात्राएँ हैं, जिससे हरिगीतिका छंद का एक अलग प्रवाह पहले के चौपाई के प्रवाह को काटकर बनता है। प्रत्येक पाँचवीं पंक्ति में 'हत्या होगी'— ये शब्द दोहराए गए हैं। इस पुनरावृत्ति के द्वारा कवि यह प्रदर्शित करना चाहता है कि हत्यारों के लिए हत्या करना आम बात हो गई है और लोग-बाग भी हत्या के दृश्य को चुपचाप देख लेते हैं, पर वास्तव में यह एक चिंतनीय घटना है।

विषाद, ग्लानि, शंका, चिंता, त्रास, वितर्क आदि अनेक संचारी भावों तथा भय के स्थायी भाव की अभिव्यक्ति इस कविता के अनुभूति पक्ष को संपन्न बनाती है। इस कविता की

विशेषता यह है कि आम आदमी की असहाय दशा और हत्यारों की निश्चिंतता की अभिव्यक्ति करते हुए कवि ने समाज में फैले आतंक को मूर्त रूप में चित्रित किया है।

समग्र प्रभाव— ***रामदास*** कविता अपनी विषयवस्तु की मौलिकता तथा अभिव्यक्ति की नवीनता के कारण एक अत्यंत प्रभावशाली रचना है। यह वास्तव में एक ऐसी कविता है, जो पाठक के मन में अनेक प्रश्न छोड़ जाती है और बार-बार उन प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है। यह कविता पाठक की संवेदनशीलता और जागरूकता को बढ़ाती है।

गद्यांश-सौंदर्य विवेचन

कविता के समान गद्यांश का विवेचन भी बाह्य पक्ष (कला पक्ष) और आंतरिक पक्ष (भाव और विचार पक्ष) के विवेचन के द्वारा किया जाता है। कला पक्ष की दृष्टि से इसकी विशेषताओं के विवेचन में भाषा-शैली, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग, शब्द चयन आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। भाव पक्ष या आंतरिक पक्ष की दृष्टि से लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति और उसके मनोभावों के निरूपण पर ध्यान रखा जाता है। यदि गद्य विचारात्मक है तो उसमें प्रस्तुत किए गए चिंतन का विश्लेषण किया जाता है। इस चिंतन की उपादेयता और प्रासंगिकता पर भी इसी संदर्भ में विचार किया जाता है। कविता के समान गद्य में भी रूपगत तत्त्व और विषयवस्तु इन दोनों का सामंजस्य जरूरी है। यह सामंजस्य किस प्रकार हुआ है— यह भी गद्यांश के सौंदर्य-विवेचन या उसकी विशेषताओं के विवेचन में बताया जाता है। सबसे पहले गद्य-रचना की विषयवस्तु का सार बताकर उस विषयवस्तु के महत्त्व या प्रासंगिकता पर विचार किया जाता है। विषयवस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, भावप्रधान, विचारप्रधान, समसामयिक आदि विभिन्न श्रेणियों में विभाजित की जा सकती है। लेखक ने जो विवेचन किया है उससे पाठक को कोई महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है अथवा उससे जीवन के किसी ऐसे सत्य का उद्घाटन होता है जिस पर पाठक चिंतन-मनन करें— यह भी वस्तुवैशिष्ट्य के अंतर्गत विचार किया जाना चाहिए। गद्यांश के विवेचन

में भी भाव अथवा विचार की व्यापकता तथा विविधता को परखा जाता है। यह भी देखा जाता है कि किस सीमा तक गद्यांश में नवीनता या मौलिकता है। तत्पश्चात् उसमें निरूपित जीवनसत्य या संदेश पर भी विचार किया जा सकता है।

भाषा-शैली के वैशिष्ट्य में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि रचनाकार ने जो विषय चुना है, उसके अनुरूप भाषा-शैली है या नहीं। गद्य की भाषा बोलचाल की या मुहावरेदार हो सकती है, साहित्यिक या क्लिष्ट भी हो सकती है। निबंध की विभिन्न शैलियाँ जो दूसरे अध्याय में बताई गई हैं, उनका उसमें प्रयोग कैसे हुआ है।

यहाँ उदाहरण स्वरूप दो गद्यांशों के सौंदर्य पर विचार किया जा रहा है–

(1)

पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते थे कि वनस्पति और मनुष्य दोनों को समान रूप से बढ़ने के लिए धूप और पोषण के लिए स्नेह या जल चाहिए। आदमी को पिता या पिता के सदृश बड़े भाई का अनुशासन न मिले तो आदमी कद में छोटा रह जाता है, पौधे या पेड़ को धूप न मिले तो या तो वह पीला पड़कर मुरझाने लगता है या फिर जमीन ही पकड़े रहता है। इसी प्रकार आदमी को माँ, बड़ी बहन का स्नेह रस नहीं मिलता, तो वह बढ़ता तो है, पर धीरे-धीरे नीरस होते-होते एकदम काठ जैसा हो जाता है, उसमें कोई सर्जनात्मक शक्ति नहीं रह जाती, वैसे ही जैसे पौधे या पेड़ को जड़ से रस न मिले, तो वह फलता-फूलता नहीं। यह साम्य ही मनुष्य को वनस्पति से बराबर स्नेहसूत्र में जोड़ता है। प्रत्येक मानव संस्कृति जीवन-वृक्ष की बात करती है, इसी सादृश्य पर वंश-वृक्ष की बात करती है। संस्कृति की निरंतरता वृक्ष की निरंतरता से तुली होती है।

यह गद्यांश पं. विद्यानिवास मिश्र के ***पीपल के बहाने*** शीर्षक ललित निबंध से लिया गया है। विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें मनुष्य और वृक्ष या वनस्पति जगत के गहरे संबंधों को रेखांकित किया गया है। लेखक ने वृक्ष और मनुष्य की तुलना बड़े रोचक ढंग से की है। उसने बताया है कि जिस तरह वृक्ष धूप में तपकर बढ़ता है, उसी तरह मनुष्य भी अपने गुरुजनों के अनुशासन

में रहकर बड़ा बनता है। पौधे को वृक्ष बनाने के लिए जल से सींचना ज़रूरी है, उसी प्रकार एक बालक के सही मानसिक विकास के लिए ज़रूरी है कि उसे स्नेह का रस मिले। इस गद्याश की विषयवस्तु के स्तर पर एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य और वनस्पति जगत की समानताओं को बहुत व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। हमारे चिंतन, दैनिक जीवन के सोच-विचार और सांस्कृतिक मान्यताओं पर वनस्पति जगत का गहरा प्रभाव है, इसीलिए जीवन को वृक्ष के रूप में देखा गया है। संस्कृति को भी वृक्ष के रूप में देखा गया है। यहाँ तक कि सारे संसार की भी एक वृक्ष से समानता बताई जाती रही है।

इस प्रकार इस गद्यांश की विषयवस्तु चिंतनप्रधान है। वह हमारे जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन करती है। वह हमें वनस्पतिजगत के साथ अपने संबंधों पर सोचने के लिए दिशा भी देती है। उससे हमें यह प्रेरणा भी मिलती है कि पेड़ हमारी ही तरह है। जिस तरह हमें अपने भाई-बंधुओं की देखभाल या रक्षा करनी चाहिए, उसी तरह पेड़ों की भी।

भाषा-शैली के स्तर पर इस गद्यांश में व्यास शैली का सटीक और सधा हुआ प्रयोग है। लेखक ने पेड़ और मानव जीवन के संबंधों को विस्तार से समझाया है। दोनों में एक-एक करके कई समानताएँ प्रतिपादित की हैं। लेखक की भाषा अत्यंत सरल है। एक-एक शब्द सहज रूप से मन में उतरता चला जाता है। इस प्रकार यह गद्यांश विषय के अनुरूप भाषा और शैली के प्रयोग का अच्छा उदाहरण है।

(2)

हमारी देशभक्ति धूल को माथे से न लगाए तो कम से कम उस पर पैर तो न रखे। किसान के हाथ-पैर मुँह पर छाई हुई यह धूल हमारी सभ्यता से क्या कहती है ? हम काँच को प्यार करते हैं, धूलि भरे हीरे में धूल ही दिखाई देती है, भीतर की कांति आँखों से ओझल रहती है, लेकिन ये हीरे अमर हैं और अपनी अमरता का प्रमाण भी देंगे। अभी तो उन्होंने अटूट होने का ही प्रमाण दिया है —'हीरा वही धन चोट न टूटे।' वे उलटकर चोट भी करेंगे और तब काँच और हीरे का भेद जानना बाकी न रहेगा। हम हीरे से लिपटी हुई धूल को भी माथे से लगाना सीखेंगे।

प्रस्तुत गद्यांश डॉ. रामविलास शर्मा के निबंध *धूल* से लिया गया है। इस निबंध में डॉ. शर्मा ने धूल को विषय बनाकर उसके माध्यम से महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। धूल मिट्टी का ही अंग है। धूल को हम अनादर की दृष्टि से देखते हैं। परंतु लेखक की मान्यता है कि यदि हमें अपने देश से प्रेम है तो देश की मिट्टी से भी लगाव होना चाहिए। जिनको हम क्षुद्र समझते हैं, उनमें महान संभावनाएँ छिपी रहती हैं। धूल भी ऐसी ही वस्तु है। लेखक ने धूल के प्रतीकात्मक स्वरूप की ओर संकेत करते हुए उसे देश की सामान्य जनता से जोड़ा है। उसकी मान्यता है कि गरीब और सताए हुए लोग एक दिन अपनी क्षमता प्रमाणित करेंगे। यह गद्यांश लेखक के प्रगतिशील विचारों को सामने रखता है। लेखक के मन में भारत की आम जनता के प्रति आस्था और विश्वास का भाव है, जिसे धूल को विषय बनाकर उसने प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह देशप्रेम और देश की जनता को जागरण का संदेश देता है। इसके साथ ही अपनी प्रगतिशील मान्यताओं के अनुरूप लेखक ने यह विश्वास भी व्यक्त किया है कि सामान्य लोग अपने अधिकारों के लिए लड़ेंगे। इस प्रकार यह गद्यांश जनता की संघर्षशीलता में आस्था प्रकट करता है।

इस गद्यांश की विषयवस्तु की एक और विशेषता है – श्रम की प्रतिष्ठा तथा श्रम करने वालों की पक्षधरता। लेखक ने मेहनत करने वाले किसानों और मजदूरों की महिमा को स्वीकार किया है। जो मेहनत करते हैं, वे ही धूल और मिट्टी में सनते हैं। उनकी देह में लगी धूल भी लेखक के लिए आदर की वस्तु है।

डॉ. शर्मा सुप्रसिद्ध प्रगतिशील विचारक हैं। इसलिए वे अपने विचारक के दायित्व के अनुरूप यहाँ तार्किक शैली का प्रयोग करते हुए निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। धूल में हीरे छिपे होने की बात कहते हुए लेखक ने एक कहावत का अच्छा उदाहरण दिया है – 'हीरा वही, घन चोट न टूटे' अर्थात सच्चा हीरा भारी से भारी हथौड़े से प्रहार करने पर भी नहीं टूटता। इस कहावत के द्वारा लेखक यह बताना चाह रहा है कि जिस आम जनता को धूल में लिपटी

हुई मिट्टी की मूरत जैसा माना जा रहा है, वह वास्तव में हीरे की तरह है। उस पर बहुत चोट की जा रही है, पर वह टूटने वाली नहीं है। निबंध की भाषा विषय के अनुरूप है। इसमें जटिल वाक्यों या क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं है। कुल मिलाकर यह गद्यांश विचार प्रधान गद्य का अच्छा उदाहरण है।

प्रश्न-अभ्यास

1 साहित्य से क्या तात्पर्य है ? साहित्य शब्द में 'सहित' और 'हित' के समन्वय को समझाइए।

2. साहित्य और वाङ्मय और काव्य के संबंध को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

3. साहित्य के विभिन्न प्रयोजनों पर प्रकाश डालिए।

4 'जीवन में साहित्य का महत्त्व' विषय पर दो सौ शब्दों में एक सारगर्भित निबंध लिखिए।

5. साहित्य के भेदोपभेद के वर्गीकरण के क्या-क्या आधार हैं ? उदाहरण सहित समझाइए।

6 बंध के आधार पर किए गए साहित्य के विभाजन अथवा वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।

7. शैली के आधार पर साहित्य के भेद समझाइए।

8. प्रबंधकाव्य से क्या आशय है? प्रबंधकाव्य के भेद संक्षेप में बताते हुए महाकाव्य की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

9. महाकाव्य और खंडकाव्य का अंतर उनके लक्षणों के आधार पर उदाहरण सहित समझाइए।

10 मुक्तक काव्य से क्या आशय है ? मुक्तक के प्रकारों को भी स्पष्ट कीजिए।

11. निम्नलिखित पर सक्षिप्त में टिप्पणियाँ लिखिए--

गीत, प्रगीत, मुक्त छंद, चतुष्पदी, लंबी कविता, अतुकांत कविता और ग़ज़ल।

12. गद्य और पद्य का अंतर स्पष्ट करते हुए आधुनिक गद्य की विभिन्न विधाओं का नामोल्लेख कीजिए।

13. निबंध शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट करते हुए निबंध के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण सहित समझाइए।

14. हिंदी निबंध की विभिन्न शैलियों पर प्रकाश डालिए।

15. कहानी के तत्त्वों को स्पष्ट करते हुए कहानी और उपन्यास के अंतर को भी समझाइए

16. उपन्यास को मानव जीवन का गद्‌यात्मक महाकाव्य क्यों कहा जाता है ?

17 विषयवस्तु और शिल्प के आधार पर उपन्यास के भेदोपभेद समझाइए।

18. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए –
(1) रेखाचित्र (2) जीवनी (3) आत्मकथा (4) यात्रावृत्त अथवा यात्रा वृत्तांत
(5) रिपोर्ताज (6) फ़ीचर (7) डायरी

19. आलोचना का आशय स्पष्ट करते हुए उसके प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

20. 'दृश्य साहित्य' से क्या आशय है?

21. आधुनिक नाटक के विभिन्न तत्त्वों को स्पष्ट कीजिए।

22. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
(1) एकांकी (2) गीति नाट्‌य
(3) काव्य नाटक (4) रेडियो रूपक
(5) नृत्य-संगीत-काव्य रूपक (बैले)।

23 शब्दशक्ति से आप क्या समझते हैं और शब्द की कितनी शक्तियाँ मानी जाती हैं।

24. लक्षणा और व्यंजना का अंतर उदाहरण सहित समझाइए।

25 रस से क्या तात्पर्य है ? रस के विभिन्न अवयवों को भी स्पष्ट कीजिए।

26. निम्नलिखित रसों के स्थायी भावों का उल्लेख करते हुए उदाहरण सहित उनके लक्षणों को स्पष्ट कीजिए–
(1) शृंगार रस (2) वीर रस (3) करुण रस ।

27 काव्य गुण किसे कहते हैं ? काव्य के विभिन्न गुणों का उदाहरण सहित परिचय दीजिए।

28. निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए–
(1) रूपक (2) उत्प्रेक्षा (3) भ्रांतिमान (4) संदेह।

29. बिंब और प्रतीक में क्या अंतर है, समझाइए ।

30 छंद की परिभाषा देते हुए उसके विभिन्न घटकों का परिचय दीजिए।

31. उदाहरण सहित अंतर स्पष्ट कीजिए–

(1) वर्णिक तथा मात्रिक छंद

(2) सम, अर्द्ध सम और विषम छंद

(3) अतुकांत तथा मुक्त छंद।